भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युगपुरुष

अक्टूबर १९७४

मूल्य : १.२५ रु०

नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण

भगवान श्री रजनीश की पावन प्रेरणा से स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मंडली का राजस्थान में धर्म चक्र प्रवर्तन

भगवान के अनादि-अनंत अस्तित्व में जिन प्रेमी संन्यासी मित्रों ने धर्म-चक्र प्रवर्तन का सक्रिय कार्य कर भगवत् वाणी को दूर-दिगंत तक पहुंचाया है, उन सुवासित नामों में हैं : मां आनंद मधु, स्वामी चैतन्य भारती, स्वामी नरेन्द्र बोधि सत्व, मां योग प्रेम और अब सक्रिय देश भ्रमण में सारा कुछ त्याग कर अपना सर्वस्व अर्पण कर भगवत् वाणी के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं पिछले दो वर्षों से स्वामी वैराग्य अमृत (म० प्र०), स्वामी योग प्रताप भारती (उ० प्र०), स्वामी निर्मल भारती (महा०), स्वामी कृष्ण सिद्धार्थ (म० प्र०), स्वामी कृष्ण पीतांबर (इंग्लैंड), स्वामी विष्णु चैतन्य (पंजाब), स्वामी आनंद तीर्थ (म० प्र०), और स्वामी आनंद अरूप (यू० एस० ए०)। 'युक्रांद' परिवार सभी संन्यासी मित्रों के चरणों में नत-मस्तक है और राजस्थान में निम्नांकित स्थलों पर नियोजित कार्यक्रम में सफलता की शुभकामनाएं अर्पित करता है :

☐ सिरोही	१-२-३ नवंबर, ७४	संयोजक :
☐ जालोर	५ से ७ नवंबर, ७४	—
☐ सिन्देरी	९ से १० नवंबर, ७४	—
☐ बाड़मेर	१२ से १४ नवंबर, ७	—
☐ जैसलमेर	१६ से १८ नवंबर, ७४	श्री हीरालाल खाव्या, कमर्शियल सुप्रिन्टेंडेंट, जैसलमेर
☐ जोधपुर	२० से २३ नवंबर, ७४	श्री रोशनलाल माहेश्वरी, एडवोकेट ३४०, सरदारपुरा, जोधपुर
☐ नागोर	२५ से २७ नवंबर, ७४	श्री हनुमान सेठिया, अवर जिला नियोजन अधिकारी, जिला नियोजक कार्यालय, नागोर
☐ बीकानेर	२९, ३० नवंबर, १, २ दिसंबर, ७४	श्री इन्द्रजीत शंगारी, जीवन जागृति केन्द्र, १७९, पोकर क्वार्टर्स, रानी बाजार, बीकानेर
☐ गंगानगर	४ से ६ दिसंबर, ७४	स्वामी गोपालानंद सरस्वती, बीकानेर बैंक के पास, गंगानगर (राजस्थान)

[शेष कार्यक्रम जन्म-दिवस विशेषांक में]

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगान्तर

वर्ष – ६ अंक – ४

मूल्य एक प्रति : १-२५ रु.
" वार्षिक : १५-०० रु.

अक्टूबर १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार

○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.

○ आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

ध्रुक्राब्द

अक्टूबर ७४

★

अ नु क्र म णि का

प्रवचन : संकलन

: ३ : स्वीकार का दर्शन
(भगवान श्री की बोध-कथाओं से)

: ५ : साधक अर्थात सोया हुआ सिद्ध
संकलन : स्वामी योग चिन्मय, पूना

: २९ : सुख और दुख : एक तीसरे आयाम की खोज
संकलन : मा योग प्रज्ञा, पूना

: ४७ : इन्द्रधनुषी स्मृतियों में भगवान श्री रजनीश
स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

गीत : काव्य

: ४ : अनकही कहानी
अरविन्दकुमार, जबलपुर

: २७ : मुखर हुए जब अंतस बोल
(दो भाव गीत) : अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'

: ४६ : भाव में डूबे क्षण
साधु अद्वैत भारती, जबलपुर

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

स्वीकार का दर्शन

सुबह आती है, तो मैं सुबह को स्वीकार कर लेता हूं और सांझ आती है तो सांझ को। प्रकाश का भी आनन्द है और अंधकार का भी। जब से यह जाना तब से दुःख नहीं जाना है।

किसी आश्रम से एक साधु बाहर गया था। लौटा तो उसे ज्ञात हुआ कि उसका एकमात्र पुत्र मर गया है और उसकी शवयात्रा अभी राह में ही होगी। वह दुःख में पागल हो गया। उसे खबर क्यों नहीं की गई? वह आवेश में अंधा दौड़ा हुआ श्मशान की ओर चला। शव मार्ग में ही था। उसके गुरु शव के पास ही चल रहे थे। उसने दौड़कर उन्हें पकड़ लिया था। दुःख में वह मूर्च्छित सा हो गया था। फिर अपने गुरु से उसने प्रार्थना की: "दो शब्द सांत्वना के कहें। मैं पागल हुआ जा रहा हूं।" और, उन्होंने शव पेटिका के ढक्कन को खोला और उससे कहा: 'देखो, 'जो है' उसे देखो। उसने देखा उसके आंसू थम गये। सामने मृत देह थी। वह देखता रहा और एक अन्तर्दृष्टि का उसके भीतर जन्म हो गया। जो है—है, उसमें रोना हंसना क्या? जीवन एक सत्य है, तो मृत्यु भी एक सत्य है, जो है—है। उससे अन्यथा चाहने से ही दुःख पैदा होता है।

एक समय मैं बहुत बीमार था। चिकित्सक भयभीत थे और प्रियजनों की आंखों में विषाद छा गया था। और मुझे बहुत हंसी आ रही थी, मैं मृत्यु को जानने को उत्सुक था। मृत्यु तो नहीं आई, लेकिन एक सत्य अनुभव में आ गया। जिसे भी हम स्वीकार कर लें, वही हमें पीड़ा पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है।

अनकही कहानी

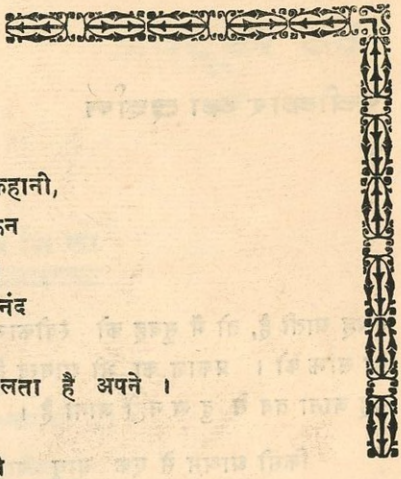

जीवन है अनकही कहानी,
सुलझाओ तो उलझन
का ताना-बाना है।
उलझाओं में ले आनंद
जिओ तो हर रोज
जीवन रहस्य खोलता है अपने।

●

और क्या रहस्य ही
जीवन के अनदेखे पर्दे पर
सबसे बड़ा आनंद नहीं है—
परमात्मा नहीं है!

●

सच कहूं...
तो सिवाय रहस्य के
और जीवन में
क्या है?.....

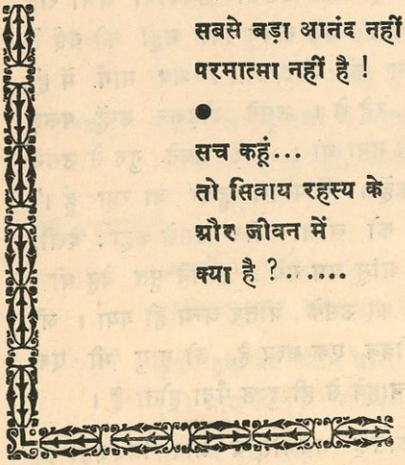

अरविन्दकुमार

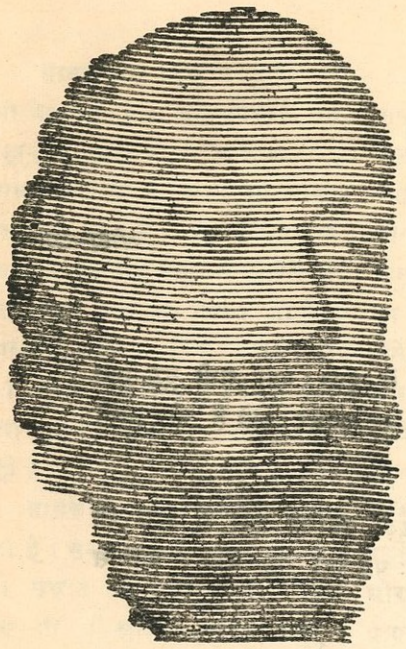

साधक अर्थात सोया हुआ सिद्ध

★

[दिनांक २१ जुलाई, १९७४ से १० अगस्त, १९७४ तक *"सहज समाधि भली"* शीर्षक पर श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगांव पार्क, पूना (महाराष्ट्र) में भगवान् श्री रजनीश के इक्कीस अमृत प्रवचन हुए हैं। प्रतिदिन एक बोध-कथा को आधार बनाकर भगवान् श्री ने प्रवचन दिया है। इस पुस्तक का सम्पादन और छपाई का कार्य साथ-ही-साथ चल रहा है। इसका प्रकाशन आश्रम की ओर से 'रजनीश फाउन्डेशन' करेगा।

प्रस्तुत प्रवचन दिनांक २४ जुलाई, १९७४ को प्रातःकाल हुआ था। यह इस श्रृङ्खला का चौथा प्रवचन है।]

□ *स्वामी योग चिन्मय*, पूना

बोध-कथा

एक शिष्य ने केम्बो से पूछा : क्या सभी बुद्ध-पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं और सभी युगों में ?

केम्बो ने अपनी छड़ी उठाकर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा : यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।

वह शिष्य फिर उमोन के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा। दोपहरी थी और उमोन के हाथ में पंखा था। उसने सभी दिशाओं में पंखा हिलाकर कहा : वह मार्ग कहाँ नहीं है ? उसका आरम्भ कहां नहीं है ?

और फिर जब किसी ने ममोन से इसी घटना का राज पूछा, तब उसने कहा : इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इसके पूर्व कि जोभ हिले, वक्तव्य पूरा हो जाता है।

साधक और सिद्ध में रत्ती भर भी भेद नहीं है। भेद दिखाई पड़ रहा है—साधक की भ्रांति के कारण। साधक भी सिद्ध है; अभी उसे इसका पता नहीं चला है। सिद्ध भी साधक था, जब तक पता नहीं था। जैसे ही पता चला सिद्ध हो गया। तो भेद आत्मा में नहीं है, सिर्फ प्रतीति में है। साधक भी सिद्ध है। सिर्फ उसे होश नहीं है; कौन है—इसका पता नहीं है।

साधक अपने ही हाथ भिखारी बना है। सम्राट होना उसकी नियति है। सम्राट वह अभी भी है। इस क्षण भी साम्राज्य खोया नहीं, क्योंकि यह साम्राज्य ऐसा नहीं है, जो खोया जा सके। स्वभावतः साम्राज्य खोया नहीं जा सकता।

साधक और सिद्ध में रत्ती भर भी फासला नहीं है; हो नहीं सकता। तुम सिद्ध हो ही। यह दूसरी बात है कि कितनी देर तुम इस बात का पता लगाने में लगाओगे। कितना समय गवांओगे, यह बात दूसरी है।

तुमसे और सिद्ध तक कोई यात्रा नहीं होनी है। तुमसे और सिद्ध तक सिर्फ स्मरण का फासला है। जैसे एक आदमी सोया है और एक दूसरा आदमी जाग कर उसके पास बैठा है। दोनों चैतन्य हैं, पर पहला आदमी गहरी नींद में है। और उसे कुछ भी पता नहीं है और वह सपनों में खोया है। और दूसरा जाग कर बैठा है। उसे सब पता है। उसके सपने टूट गये है। पर क्या दोनों में वस्तुतः शेष है? जरा-सा हिलाना, जरा-सा डुलाना या घड़ी का एलार्म भी सोये को जगा देगा। जैसे ही जागेगा, वैसे ही उसमें और जागने वाले में जरा भी फर्क न रह जायेगा। फर्क पहले भी न था। बस, पहला व्यक्ति ढंका पड़ा था तन्द्रा में। और दूसरे की तन्द्रा टूट गई थी। दूसरे व्यक्ति को स्मरण आ गया था और पहले को अभी स्मरण नहीं आया था। पर दोनों की अन्तरात्मा में भेद नहीं है।

पहले तो यह बात ठीक से समझ लें अन्यथा अक्सर ऐसा होता है कि साधक यह सोचकर कि मैं तो साधक हूं, सिद्ध के वचनों से वंचित रह जाता है। सोचता है: यह तो बहुत ऊपर की बात है—अपनी समझ के पार। यह तो आकाश की बात है; हम तो पृथ्वी पर खड़े हैं। यह हमारे लिए नहीं है। लेकिन तुम चाहे कितने ही पृथ्वी पर खड़े रहो, तुम्हारा सिर सदा आकाश को छू रहा है। एक क्षण को भी इससे बचने का उपाय नहीं है। क्योंकि पृथ्वी भी आकाश में है। और तुम जहां भी हो आकाश से घिरे हो।

बहुत बार यह सोचकर कि ये वचन हमसे बहुत ऊपर के हैं हम अकारण ही अपने को नीचे रखने का कारण बन जाते हैं। कोई बचन तुमसे ऊपर नहीं है, क्योंकि कोई अनुभव तुमसे पार नहीं है। और ब्रम्ह अगर कहीं सातवें आकाश में होता, तो शायद फासला भी होता। लेकिन ब्रम्ह तुम्हारे भीतर है। सीढी लगाकर उस तक पहुंचना नहीं है, सिर्फ आंख खोलकर उस तक पहुंचना है।

मैंने सुना है : एक शराबी एक रास्ते से गुजर रहा है; गहरे नशे में है, पैर डगमगाते हैं। कुछ पता नहीं कि कहां जा रहा है और एक स्त्री—एक नीतिवादी स्त्री जो शरीर से अति कुरूप और भयंकर दीखती थी, उसने उस शराबी को रोका और कहा कि क्या कर रहे हो यह ? यह आन्तरिक कुरूपता छोड़ो; यह बेहोशी हटाओ। तुम निन्दा के योग्य हो, पापी हो। शराबी ने आवाज सुनकर आंख खोली। देखा इस कुरूप स्त्री को, सामने खड़े। उसने कहा : मैं तो सुबह होश में आ जाऊंगा, लेकिन तेरी कुरूपता का क्या होगा ? यह सुबह भी ऐसी ही रहेगी।

सिद्ध और साधक के बीच जो फर्क है, वह शराबी और होश में आ गये व्यक्ति के बीच का फर्क है। सुबह जागकर तुम भी पाओगे कि तुम सिद्ध हो। वह फासला ऐसा नहीं है कि कुरूपता जैसा हो कि सुबह भी वैसी ही रहेगी—चाहे तुम जागो, चाहे तुम सोओ।

स्मरण का हल्का-सा झोंका तुम्हारे सारे संसार को बहा ले जायेगा। इस संसार की जगह तुम पाओगे—एक स्वच्छ आकाश। इसलिए पहली बात तो यह ख्याल में ले लो कि सिद्ध और साधक के बीच कोई अन्तर नहीं है। भक्त और भगवान में रत्ती भर का फासला नहीं है। और अगर फासला है, तो वह भक्त के ख्याल में है, भगवान के ख्याल में नहीं है। वह भक्त की ही भ्रांति है।

दूसरी बात : चाहे सिद्ध कैसे ही मार्गों से पहुंचे हों और चाहे उन मार्गों के नाम अनेक हों, लेकिन मार्ग एक ही है। मार्ग दो हो नहीं सकते। इसे समझना पड़े, थोड़ा कठिन है, थोड़ा सूक्ष्म है। अगर हम प्रतिमायें बनायें, तो लाख तरह की प्रतिमायें बन सकती हैं। लेकिन हम प्रतिमायें मिटायें, तो मिटाना तो एक ही तरह का होगा। तुम मकान बनाओ तो आर्किटेक्ट्स हजार रास्ते बतायेंगे मकान बनाने के, लेकिन अगर मकान गिराना हो तो किसी आर्किटेक्ट्स से कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। और

मकान किसी भी ढंग का बना हो, गिराने का ढंग तो एक ही होगा। गिराने में क्या फर्क होगा ?

सिद्धत्व को पाना, बुद्धत्व को पाना, संसार को मिटाने की प्रक्रिया है—कुछ बनाने की नहीं। बनाने में भेद होते हैं। मिटाने में क्या भेद होता है ? आकार भिन्न होते हैं। निराकार कैसे भिन्न होगा ? तुम्हारे खीसे में रुपये हों, मेरे खीसे में रुपये हों, तो फर्क हो सकता है। तुम्हारे पास करोड़ हो सकते हैं। मेरे पास अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने रुपये हो सकते हैं, फर्क हो सकता है। लेकिन तुम्हारा भी खीसा खाली हो, मेरा भी खीसा खाली हो, तो खालीपन में क्या फर्क होंगे ? भरेपन में फर्क हो सकते हैं। मात्रा का भेद हो सकता है, लेकिन खाली की तो कोई मात्रा नहीं होती। खाली तो सिर्फ खाली होता है।

वस्तुओं में अन्तर होते हैं, शून्य में कैसे अन्तर होगा ? सभी शून्य समान होते हैं। तुमने सोचा भी न हो : एक छोटा शून्य बनाओ, और एक बहुत बड़ा शून्य बनाओ। क्या दोनों में कुछ भेद होगा ? शून्य का मूल्य तो शून्य है। एक में भेद है, दो में भेद है, तीन में भेद है, संख्याओं में अन्तर है; शून्य अभेद है।

सिद्धत्व को पाना मिटने की प्रक्रिया है, खोने की प्रक्रिया है। गंगा अलग है, यमुना अलग है वे मिल जायें तो भी दोनों का पानी अलग दिखाई पड़ता है। नर्मदा अलग है। कोई नदी पूरब की तरफ बह रही है, कोई पश्चिम की तरफ बह रही है। सबका ढंग अलग है, सबके किनारे—यात्रा-पथ अलग हैं। लेकिन सागर में—जहां नदियां मिल जाती हैं, रूप मिट जाते हैं, वहां कौन-सा जल गंगाजल है ? वहां सभी खारा हो जाता है। वहां गंगा, यमुना और नर्मदा के भेद नहीं रह जाते।

बुद्धत्व सागर में खोने का नाम है। वहां व्यक्तित्व शून्य होता है। इसलिए मार्ग कितने ही अलग मालूम होते हों, अलग हो नहीं सकते। मिटने का मार्ग तो एक ही होगा। तुम नाम अलग रख सकते हो, वह तुम्हारी मर्जी है। बस, नाम का ही भेद होगा, यथार्थ भिन्न नहीं हो सकता। लेकिन उस यथार्थ को कहने के ढंग भिन्न हो सकते हैं। और दो मूल ढंग हैं कहने के। वह ख्याल में ले लो, तो यह छोटा-सा संवाद बड़ा अद्भुत हो जायेगा।

दो ढंग हैं उसे कहने के। एक ढंग तो है—पूर्ण निषेध का और एक ढंग है—पूर्ण विधेय का। एक है—निगेटिवटी का, और एक है—

पाजिटिविटी का। या तो तुम कह सकते हो कि वह शून्य है। या तुम कह सकते हो कि वह पूर्ण है। मगर दोनों का मतलब एक है। क्योंकि पूर्ण भी शून्य है।

पूर्ण कोई संख्या नहीं है। पूर्ण की कोई मात्रा नहीं है। शून्य भी कोई संख्या नहीं है; उसकी भी कोई मात्रा नहीं है। शून्य वहां है, जहां संख्याएं शून्य हैं। और पूर्ण वहां है, जहां संख्याएं समाप्त हो गई हैं। शून्य संख्याओं के पहले का नाम है और पूर्ण संख्याओं के बाद का। लेकिन एक मामले में बात साफ है कि संख्या वहां दोनों में नहीं है। दोनों संख्याशून्य हैं, संख्या रहित हैं या कहें असंख्य हैं। और यह भी हमारे ख्याल में है कि एक संख्या के पहले और दूसरी संख्या के बाद। लेकिन संख्या के पहले जो है, वही तो संख्या के बाद बचेगा। जब संख्याएं शून्य ही होती हैं, तब शून्य है और जब संख्याएं समाप्त हो जाती हैं, तब जो बचता है, उसे हम पूर्ण कहते हैं। लेकिन बचेगा तो वही जो संख्याओं के पहले था। संख्याएं डाल दी थीं। संख्याएं निकाल लीं। बचेगा क्या? तुम्हारा खीसा खाली था—शून्य था। हमने रुपये डाल दिये, फिर हमने रुपये निकाल लिए। बचेगा क्या? बचेगा वही, जो रुपये डालने के पहले था।

तो पूर्ण हमारे कहने का ढंग है अन्यथा शून्य ही है। न शून्य की कोई सीमा है, न पूर्ण की कोई सीमा है। दोनों के बीच में सब सीमाएं हैं और ये दोनों असीम हैं। लेकिन दो असीम हो नहीं सकते। यह थोड़ा गणित का गहरा सवाल है।

असीम तो एक ही हो सकता है। क्योंकि अगर दो असीम हों, तो वे एक दूसरे की सीमा बनायेंगे। दो असीम नहीं हो सकते हैं, सीमित अनन्त हो सकते हैं। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि दो ईश्वर नहीं हो सकते। क्योंकि अगर दो होंगे, तो वे एक-दूसरे की सीमा बनायेंगे। दूसरे से सीमा निर्मित हो जायेगी। दो असीम न हो पायेंगे। असीम तो एक ही होगा। इनफिनिट एक ही होगा। संख्या के पहले हम उसे शून्य कहते हैं; संख्या के बाद उसे पूर्ण कहते हैं, लेकिन वह एक है। पर प्रगट दो ढंग से किया जा सकता है। और दो ही तरह के चित्त हैं।

एक चित्त है, जो शून्य में आनंद लेता है और एक चित्त है, जो पूर्ण में आनन्द लेता है। इसलिए दुनिया के सारे धर्म अभिव्यक्तियों के भेद हैं।

बुद्ध शून्य में रस लेते हैं—संख्या के पहले। वे कहते हैं—संख्या की उलझन में ही क्यों जाना?

संख्या के पहले जो है, उसी में उनका रस है। तो वे शून्य का प्रयोग करते हैं। शंकर पूर्ण का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं—संख्या के पार। लेकिन जो लोग जानते हैं, वे जानते हैं कि शंकर और बुद्ध एक ही बात कह रहे हैं। इसलिए रामानुज ने शंकर की आलोचना में एक शब्द उपयोग किया है वह है: 'प्रच्छन्न बौद्ध'—छिपा हुआ बौद्ध। शंकर से बड़ा आलोचक खोजना मुश्किल है—बुद्ध का। शंकर ने बड़ी गहरी आलोचना की है। क्योंकि शंकर पूर्ण के आग्रही हैं। शून्य की भाषा उन्हें जंचती नहीं। वे कहते हैं: शून्य तो नकार है और परमात्मा? परमात्मा नकार नहीं है, वह पूर्ण है। वह सब कुछ है। उसे मत कहो—'कुछ भी नहीं'। उसे कहो: 'सब कुछ'। वह सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान है, सर्व व्यापक है। वह शून्य नहीं है, पूर्ण है। तो शंकर आलोचना करते हैं बुद्ध की, लेकिन रामानुज ने कहा है कि शंकर छिपे हुए बौद्ध हैं। इनमें जरा भी भेद नहीं है—बुद्ध में और शंकर में। है भी नहीं। क्योंकि तुम पूर्ण की कोई भी परिभाषा करो, वह शून्य की ही परिभाषा होगी। तुम शून्य के लिए कुछ भी कहो, वह पूर्ण ही होगा।

अब हम इस संवाद में प्रवेश करें।

एक शिष्य ने केम्बो से पूछा, "क्या सभी बुद्ध पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं और सभी युगों में, सभी, सभी युगों से, सदा से?

केम्बो एक बुद्ध पुरुष हैं—एक जाग्रत चैतन्य। "क्या सभी बुद्ध पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं? और सभी युगों से, केम्बो ने अपनी छड़ी उठाकर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा, यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।" छड़ी उठाकर हवा में शून्य की आकृति बना दी केम्बो ने और कहा: ये रहा वह मार्ग। यहीं से सब शुरू होता है। यहीं से सब बुद्ध जाते हैं।

उत्तर बड़ा बारीक है और ठीक किया केम्बो ने कि जमीन पर खड़िया से आकृति न बनाई। क्योंकि जमीन पर खड़िया से बनाई गई आकृति शून्य नहीं हो सकती। आकृति बन जाय, तो निराकार खो जाता है। ठीक किया केम्बो ने, खाली आकाश में छड़ी से आकृति बना दी। बन भी न पाई और खो गई।

तीन तरह की आकृतियां हैं। पत्थर पर आकृति बनाओ, सदियों तक टिकती है। पानी पर आकृति बनाओ, बनती है, मिट जाती है। आकाश में आकृति बनाओ, बनती ही

नहीं। इसलिए इस्लाम विरोध में है—पत्थर की मूर्ति के। क्योंकि वह कहता है : पत्थर में तुम आकृति बना रहे हो, निराकार की ? मत बनाओ आकृति। मस्जिद को खाली ही रहने दो। मंदिर शून्य रहने दो। क्योंकि पत्थर में बनाई आकृति मिट जायेगी, और परमात्मा कभी मिटता नहीं है। इसलिए इस्लाम मूर्तियों को मिटाता रहा है। क्योंकि तुम मूर्तियां बना कर परमात्मा को मिटा रहे हो। हटाओ मूर्तियों को। मूर्त वह नहीं है, उसे अमूर्त ही रहने दो।

इस्लाम पसंद करेगा केम्बो की बात, कि उसने शून्य में आकृति बनाई है।

पानी पर आकृति बनाओ तो खिंचती है, मिट जाती है। पत्थर पर बनाओ, टिकती है। आकाश में बनाओ, न बनती है, न मिटने का कोई सवाल है।

और केम्बो ने कहा कि 'यह रहा वह मार्ग।' जिस दिन तुम भी—तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी अस्मिता तुम्हारा होना आकाश में खिंची हुई शून्य की आकृति की भांति हो जायेगा, उसी दिन तुम बुद्ध हो जाओगे। बुद्ध तो तुम अभी हो। लेकिन तुमने खड़िया-मिट्टी से अपनी आकृति खींच ली है। या तुम कोशिश कर रहे हो, पत्थर पर आकृति बनाने की।

लोग मरते हैं, तो पत्थर पर नाम खोद जाते हैं। लोग पहाड़ों पर जाते हैं—यात्रा को तो पत्थरों पर नाम खोद आते हैं। बड़ा मोह है—बने रहने का। किसी भी तरह मैं बचूं, खो न जाऊं। कुछ भी नाम—रेखा रह जाय। तो मंदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, लेकिन सारी चेष्टा अहंकार की है। और अहंकार का अर्थ हुआ : जहां रेखा नहीं खींचनी थी, वहां तुमने रेखा खींच ली और आकृति बना ली। बस, यही सिद्ध और साधक का फर्क है—कि साधक आकृतियां खींच रहा है और सिद्ध समझ गया है कि आकृतियां व्यर्थ हैं; निराकार होना मेरा स्वभाव है।

केम्बो ने अपनी छड़ी उठाकर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा, "यह रहा वह मार्ग।" हो जाओ शून्य बन जाओगे बुद्ध। हो जाओ खाली। तुम्हारी नाव में कोई यात्री न रहे। तुम सूने घर हो जाओ, जहां कोई भी नहीं है। एक सन्नाटा है—एक मौन, जहां शब्द भी नहीं उठते। जहां लहरें तरंगें नहीं लेतीं, जहां कोई आकृति निर्मित नहीं होती। जहां सिर्फ सन्नाटा है। जहां कोई प्रतिध्वनि भी नहीं गूंजती। तुम हो जाओ ऐसे, बस, यहीं से मार्ग शुरू होता है।

शून्य हो जाने की कला ही महाकला है। जिसने जान लिया मिटना, उसने पाने का राज पा लिया।

मलूक ने कहा है, "राम द्वारे जो मरै, बहुरि न मरना होय।" राम के दरवाजे पर जो मर जाना सीख जाता है, फिर उसकी मृत्यु नहीं होती। उसने अमृत का सूत्र पा लिया है। पर 'राम के द्वार पर ।'

तुम्हारी हालत उलटी है। राम को भी तुम नियोजित कर रहे हो, अपने काम में। तुम परमात्मा को भी काम में लगाने की कोशिश में हो। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं मांगें हैं : लड़का पैदा हो जाए, कि धन मिल जाय, कि नौकरी बड़ी हो जाय। तुम परमात्मा से भी शोषण का सम्बन्ध रखना चाहते हो। तुम उसकी हत्या कर रहे हो।

नीत्से ने एक अद्भुत किताब लिखी है : "दस स्पेक जरथुस्त्र"। उस किताब में एक बड़ी मीठी कहानी है कि जरथुस्त्र पहाड़ से नीचे उतरा, बाजार में गया भागता हुआ, चीख उसने लगाई और कहा कि सुनो, तुम अपने काम में लगे हो, दुकान खोले धन्धा कर रहे हो! तुम्हें पता नहीं है कि ईश्वर मर गया। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा : तुम्हारा दिमाग खराब हुआ है? किसी ने उसकी बात सुनी नहीं, मानी नहीं। लोग अपने काम में लगे रहे। तो जरथुस्त्र ने स्वयं से कहा : ऐसा मालूम होता है, इन तक अभी खबर नहीं पहुंची है। लेकिन तब जरथुस्त्र सोचने लगा, यह कैसे हो सकता है, क्योंकि इन्होंने ही तो उसकी हत्या की है। और इन तक ही उसकी खबर नहीं पहुंची है। तो सोचा जरथुस्त्र ने कि शायद पुजारियों को पता होगा। क्योंकि वे परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। उसने मंदिरों के द्वारों पर दस्तक दी, पुजारियों को हिलाया और कहा कि सुनो, 'किसकी पूजा कर रहे हो? वह मर चुका।' पुजारियों ने कहा : बाहर हटो, इस तरह की नास्तिकता की बात मत करो। तब जरथुस्त्र ने कहा : हद हो गई। तुम्हीं ने उसकी गर्दन तुड़वाई और तुम्हीं को उसका पता नहीं है? खूब भोले बने बैठे हो?

तुम पूछते फिरते हो, ईश्वर कहां है और तुमने ही उसे मार डाला है—दरवाजे पर ही। अहंकार ईश्वर की हत्या है। क्योंकि अहंकार यह कह रहा है : मैं हूं—तू नहीं। और अगर तू भी है तो मेरे लिए है। निरहंकार का अर्थ है कि तू है, मैं नहीं। 'राम द्वारे जो मरै, बहुरि न मरना होय।'

निरहंकार का अर्थ है—शून्यता

—कि मैं अपने को छोड़ता हूं तेरे द्वार पर; अब मैं नहीं हूं। और जिस क्षण तुम नहीं हो, उसी क्षण परमात्मा जीवन्त है। तुम दोनों में से एक ही जी सकता है। अगर तुम जी रहे हो, तो परमात्मा मरेगा। अगर परमात्मा जी रहा है, तो तुम मिटोगे। तुम दोनों का एक साथ होना सम्भव नहीं है। तुम दोनों विपरीत हो।

केम्बो ने शून्य बनाया आकाश में, वह बना भी नहीं है, क्योंकि तुम पकड़ना चाहो इस केम्बो के शून्य को, तो पकड़ न पाओगे। तुम मुट्ठी में बांधना चाहोगे, तो बांध न पाओगे। तुम किसी को दिखाना चाहो कि यह बनाया है मार्ग केम्बो ने, तो तुम दिखा न पाओगे। लेकिन इशारा कीमती है।

केम्बो ने कहा, "यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है।" और जो इसमें प्रविष्ट हो गया, वह बुद्ध हो गया।

मिटने के मार्ग दो कैसे हो सकते हैं? मिटने का मार्ग तो एक ही हो सकता है। यह भी हो सकता है कि कोई आदमी पहाड़ से कूद कर मरे, कोई आदमी जहर पी कर मरे, कोई आदमी ट्रेन के नीचे दब कर मरे। लेकिन फिर भी क्या तुम कहोगे कि मरने के मार्ग अलग हो सकते हैं? क्योंकि मरने की घटना तो भीतर एक ही होगी। चाहे तुम पहाड़ से कूदो, चाहे तुम जहर पीओ, चाहे तुम ट्रेन के नीचे दब जाओ, लेकिन मरने की जो घटना है, प्रक्रिया है, वह तो एक ही होगी।

शून्य तो एक ही होगा। फर्क यह हो सकता है कि किसी ने लाल छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, किसी ने हरी छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, किसी ने पीली छड़ी से आकाश में शून्य बनाया है, लेकिन छड़ी का रंग क्या शून्य में प्रवेश कर सकता है? शून्य तो निराकार रहेगा, शून्य तो निर्गुण रहेगा, शून्य तो निरंग रहेगा, तुम्हारी छड़ी का रंग तो शून्य में नहीं उतर सकता।

तो तुम जहर पी कर मरे, कि तुम पहाड़ से कूद कर मरे, कि तुम सागर में डूबकर मरे, इससे क्या फर्क पड़ता है। जब शरीर से आत्मा अलग होगी तो वह घटना एक ही होने वाली है। तुम कैसे अलग हुए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम मस्जिद के सामने टूटे, कि तुम मंदिर के सामने टूटे, कि तुमने राम के द्वार पर अपने को मिटाया, कि तुमने बुद्ध के द्वार पर अपने को मिटाया—क्या फर्क पड़ता है? छड़ी के रंग शून्य में नहीं उतरेंगे। जब तुम मिट जाओगे तो न मंदिर रहेंगे, न मस्जिद रहेंगे, न राम रहेंगे, न कृष्ण, न

बुद्ध । शून्य ही रह जायेगा ।

उस शून्य का कोई भी नाम नहीं है । इसलिए केम्बो ने ज्यादा बात नहीं की । केम्बो ने कहा, "यह रहा मार्ग । यहीं से वह शुरू होता है ।" मार्ग अलग-अलग दिखाई पड़ते हों, अलग-अलग हो नहीं सकते । शून्यों में भेद हो नहीं सकता ।

वह शिष्य लेकिन तृप्त न हुआ होगा । अन्यथा कहीं और जाने की जरूरत न थी । शिष्य बड़े कठिन प्राणी हैं ! उनकी बीमारी बड़ी उलझन भरी है । केम्बो जैसे व्यक्ति के पास पहुंचकर भी यह व्यक्ति तृप्त न हुआ । कुएं से प्यासा लौट गया । इसको कुआं दिखाई ही न पड़ा । बल्कि शायद इसे कुएं में और समस्याएं दिखाई पड़ीं । यह जो सवाल लेकर आया था, वह तो बना ही रहा । यह केम्बो और एक सवाल बन गया । इसकी छड़ी, इसका आकाश में शून्य का बनाना और नई समस्याएं खड़ी हो गईं कि केम्बो का प्रयोजन क्या है ? मैंने तो सीधा-सा सवाल पूछा था, इसने और पहेली खड़ी कर दी ।

वह शिष्य दूसरे गुरू के पास पहुंचा । शिष्य एक गुरू से दूसरे गुरु के पास भटकते रहते हैं और इस तरह भटकने की अगर आदत बन जाय, तो गुरु से मिलना असम्भव हो जायेगा । क्योंकि वे पहुंच भी नहीं पाते कि वे दूसरे के पास पहुंचने के लिए बिस्तर बांधने लगते हैं । वे जहां भी पहुंचते हैं, भीतर नहीं पहुंच पाते, बाहर से ही लौट जाते हैं ।

अगर उस शिष्य में थोड़ी भी समझ होती तो केम्बो की छड़ी पकड़ लेनी थी । अब कहीं जाने की बात नहीं रही । राम का द्वार आ गया, यहीं मरना था ।

इस आदमी ने जो बात कही थी, इसमें और परिष्कार किया नहीं जा सकता । यह आखिरी है । लेकिन शिष्य लौट गया । वह शिष्य उमोन के पास गया—दूसरे बुद्ध पुरुष के पास पहुंचा और उसने उससे भी यही सवाल पूछा । दोपहर थी और उमोन के हाथ में पंखा था । उसने सभी दिशाओं में पंखा हिलाकर कहा, "वह मार्ग कहां नहीं है ? उसका आरम्भ कहां नहीं है ?"

केम्बो शून्य का पक्षपाती रहा होगा, उमोन पूर्ण का पक्षपाती है । केम्बो बुद्ध जैसा था, उमोन शंकर जैसा है । उसने कहा : चारों तरफ मार्ग ही मार्ग हैं । सभी कुछ मार्ग है । केम्बो ने तो शून्य खींचा था आकाश में, जगह बताई थी कि यह रहा मार्ग । उमोन ने अपने पंखे को सब दिशाओं में घुमाया और कहा : सभी दिशाएं उसका मार्ग हैं । यह सारा

आकाश उसका मार्ग। इससे छोटे से काम न चलेगा। वही वही है। तुम जहां खड़े हो, वहीं से मार्ग है। कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। तुम जो हो, वही मार्ग है। क्योंकि तुम पूर्ण हो।

शून्य की भाषा में मार्ग की तरफ इन्गित हो सकता है; पूर्ण की भाषा में इंगित भी नहीं हो सकता है। अगर शून्य को बताना हो तो उंगली उठाई जा सकती है; पूर्ण को बताना हो तो मुट्ठी बांध कर ही बताया जा सकता है। सब दिशाएं उसी की हैं।

नानक मक्का गये। रात सोये, तो पैर उन्होंने पवित्र पत्थर की तरफ कर दिए थे। पुजारियों को खबर लगी, वे बहुत नाराज हुए। पुजारियों से ज्यादा अंधे लोग खोजना कठिन है। नानक आये थे, इनको तो नहीं पहचान पाये वे। ये वही था, जो मुहम्मद थे। जरा भी फर्क न था। लेकिन उन्होंने देखे इनके पैर और कहा अपने पैर दूसरी दिशा में करो। पवित्र मंदिर की तरफ— परमात्मा की तरफ पैर! शर्म नहीं आती! और ज्ञानी होने का दावा करते हो? तो नानक ने कहा, तुम्हीं मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो।

पुजारी मुश्किल में पड़ गये होंगे। अब पैर कहां करें, जहां परमात्मा न हो! कहानी तो यह कहती है कि उन्होंने पैर सब दिशाओं में करके देखे, लेकिन जिस तरफ पैर किए उसी तरफ मक्का का मंदिर घूम गया। मगर यह तो प्रतीक है, मंदिरों का घूमना इतना आसान नहीं है; पुजारी नहीं घूमते, मंदिर क्या घूमेंगे? पुजारी पत्थर हैं, तो पत्थरों के मंदिर क्या घूमेंगे? लेकिन नानक की बात सच है।

पुजारियों को समझ में आ गई होगी इतनी बात कि पैर कहीं भी करना व्यर्थ है, क्योंकि मंदिर तो उसका सभी तरफ है। वह किस दिशा में नहीं है? और जिस तरफ हम इनके पैर करेंगे, तो ये कहेंगे क्या यहां परमात्मा नहीं है? और यह भी तो कहना उचित नहीं है कि इस दिशा में थोड़ा ज्यादा है, उस दिशा में थोड़ा कम है। क्योंकि परमात्मा क्या कम-ज्यादा हो सकता है? या तो है या नहीं है।

उमोन नानक जैसा आदमी रहा होगा। उसने पंखे को चारों तरफ घुमाकर कहा, "कहां नहीं है उसका मार्ग? कहां नहीं है उसका आरंभ?"

शिष्य और भी मुश्किल में पड़ गया होगा। अगर कभी कोई बुद्ध-पुरुष मिल जाय, तो जहां तक बने उसी में डूब जाना उचित है। दूसरा

बुद्ध पुरुष मिल जाय तो तुम्हारा कन्फ्यूजन (उलझन) और बढ़ेगा, घटेगा नहीं। क्योंकि दूसरा बुद्ध पुरुष दूसरी भाषा बोलेगा। पहली भाषा भारी पड़ गई थी; केम्बो ही समझ में नहीं आया था। अब और मुसीबत हो गई। क्योंकि यह बिल्कुल विपरीत भाषा है। केम्बो ने दिशा बताई थी, इशारा साफ किया था। इस आदमी ने सब दिशाएं छीन लीं। इशारा और धूमिल हो गया।

केम्बो ने कहा था, 'यह रहा।' इस आदमी ने कहा, 'कहां नहीं है?' दोनों एक ही बात कहते हैं। लेकिन यह शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगा।

दो बुद्धों के बीच अगर शिष्य पड़ जाय तो पिस जायेगा। एक बुद्ध काफी है। ऐसा हुआ। एक यहूदी सिद्ध पुरुष हुआ—बालसेन। एक शिष्य उसके पास आता था। उस शिष्य के लिए यही रेबाई था, यही गुरु था। शिष्य पापी भी था, उपद्रवी भी था, शराबी भी था, सब तरह के दुराचरण उसमें थे। एक दिन बालसेन को पता चला कि वह शिष्य दूसरे गांव गया है, दूसरे रेबाई, दूसरे गुरु के पास। जब वह लौट कर आया, तो बालसेन ने पूछा कि क्या मैं अकेला काफी नहीं था? तो शिष्य ने (जो कि सिर्फ एक छोटा-सा गाड़ीवान था) कहा कि ऐसा है कि अगर कीचड़ बहुत हो, तो एक घोड़े से काम नहीं चलता है। दो घोड़ा जोतना पड़ता है। और मुझमें कीचड़ बहुत है, वह आप भलीभांति जानते हैं। तो मैंने सोचा कि अच्छा होगा—दो गुरु, दो घोड़े। कीचड़ से आप अकेले शायद न निकाल पायें, क्योंकि बहुत कीचड़ है। आपका कसूर नहीं है। बालसेन ने कहा कि तू ठीक कहता है. लेकिन इस जगत में जहां तू गुरुओं की खोज कर रहा है, यहां अक्सर घोड़े विपरीत दिशाओं में खड़े हैं। तो दो घोड़े अगर एक गाड़ी में दो तरफ जोत दिए तो कीचड़ से निकलना कभी सम्भव ही न हो पायेगा। एक बाहर खींचेगा, दूसरा भीतर खींच लेगा।

दो बुद्धों से बचना। एक काफी है। क्योंकि कभी-कभी दवाइयां बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होती हैं। और दो तरह की दवाइयां तो बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। सभी दवाइयां जहर हैं। और जहर को अमृत में बदलना कला है। लेकिन दो विपरीत जहर ले जाने पर बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाती है।

पृथ्वी पर बहुत बुद्धों के कारण बहुत कठिनाई है। कसूर उनका नहीं है। क्योंकि हर बुद्ध पुरुष अपने ढंग का है। वह अपने ही ढंग से बोलेगा।

अपने ही ढंग से कहेगा। वह तुमसे समझौता भी नहीं कर सकता है। उसने जिस ढंग से जाना है, वह उसी को प्रामाणिक रूप से कह भी सकता है, दूसरे ढंग की बात कर भी नहीं सकता।

केम्बो ने शून्य से जाना, तो शून्य वाली बात कही। उमोन ने पूर्ण से जाना, तो पूर्ण की बात कही। तुम्हारी बुद्धि के लिए बड़ी कठिनाई हो जायेगी, क्योंकि ये दो विपरीत बातें हो गईं—तुम्हारे लिए। ये विपरीत नहीं हैं सिद्ध के लिए। लेकिन तुम अगर सिद्ध होते, तो तुम चिन्ता में ही क्यों पड़ते? तुम अगर सिद्ध होते तो इन बुद्धों के पास जाते ही क्यों? तुम गये ही इसलिए कि तुम अभी स्मरण से भरे हुए नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगी।

वह शिष्य उमोन के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा। फिर कहानी नहीं कहती है कि वह कहीं गया कि नहीं। जाने की हालत में ही नहीं रहा होगा। उसका विभ्रम भारी हो गया होगा। शायद उसने यह तलाश ही छोड़ दी होगी कि यह तो पागलपन का मामला है। एक कहता है, 'यह रहा।' और एक कहता है, 'कहां नहीं है।' इससे ज्यादा विपरीत छोर और क्या होंगे! शायद वह वापस अपनी दुकान पर लौट गया होगा। उसने सोचा होगा; अपनी दुकान करो, अपना धन्धा करो।

लेकिन पीछे किसी और ने, जो अध्ययन कर रहा होगा इन घटनाओं का, और शिष्य के लिए दिये गये दो उत्तर जिसने पढ़े होंगे, उसने ममोन से—एक तीसरे बुद्ध-पुरुष से पूछा कि इस घटना का राज क्या है?

अब यह और एक खतरनाक बात है। इसमें तुम एक तीसरे बुद्ध-पुरुष को प्रवेश करवा रहे हो। उसकी व्याख्या तुम्हें हल नहीं करवायेगी। उसकी व्याख्या एक तीसरे सूत्र को भीतर ले आयेगी।

ममोन से इस घटना का राज जब किसी ने पूछा, तो उसने कहा, "इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इसके पूर्व कि जीभ हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।" उसने न तो शून्य की तरफ इशारा किया, न पूर्ण की तरफ इशारा किया। उसने कुछ और ही बात कही। उसने दोनों घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ कहा जो कि अति जटिल है। इससे ज्यादा जटिल वक्तव्य नहीं हो सकता है।

उसने कहा कि इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। मंजिल आ जाती है—मंजिल

इतनी पास है। तुम मार्ग की बकवास ही क्यों कर रहे हो ? तुम मार्ग को पूछते ही क्यों हो ? तुम पूछोगे गलत सवाल, तो मुश्किल में पड़ोगे।

तुमने पूछा, 'मार्ग कहां है।' केम्बो ने शून्य बना दिया; कहा, 'यह रहा।' तुम इतने से राजी न हुए। तुमने फिर भी पूछा, 'मार्ग कहां है ?' उमोन ने कहा, 'कहां नहीं है ? सब तरफ है।' और अब तुम पूछते हो, 'इन दोनों का राज क्या है ?' तो ममोन कह रहा है, 'इसके पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है।' मार्ग की बात ही बकवास है। पहला कदम उठता नहीं है कि मंजिल आ जाती है। पहले कदम के उठने में मंजिल है। मार्ग तो तब होता है, जब मंजिल में और तुममें फासला हो। तो फिर हजार कदम उठाना पड़े, दस हजार कदम उठाना पड़े, तब मंजिल आये। लेकिन तुमने पहला कदम उठाया नहीं, पहला कदम जमीन छू भी नहीं पाता कि मंजिल आ जाती है।

यह तो बड़े मजे की बात हो गई। ममोन ने कहा कि उठना ही, पहले कदम का, मंजिल का आ जाना है। तुम दूर नहीं हो, सिर्फ ख्याल की बात है।

साधक ने उठाया कदम कि सिद्ध हो गया। कदम उठाने की वजह से सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उतना भी फासला नहीं है। कदम उठाने का ख्याल, संकल्प—बस, काफी है। तुमने तय किया कि ध्यान—कि ध्यान हो जायेगा। और नहीं हो रहा है, तो उसका मतलब है कि तुमने तय ही नहीं किया है, तुम खेल खेल रहे हो अपने साथ।

एक मस्जिद में एक फकीर उपदेश दे रहा था। उसने स्वर्ग के बड़े सुन्दर चित्र खींचे और कहा कि जिन-जिन को स्वर्ग जाना है, वे खड़े हो जायें। उसकी वाणी में बल था। आंखों में तेज था—जादू था। करीब-करीब नब्बे प्रतिशत लोग खड़े हो गये। फिर भी दस प्रतिशत लोग बैठे थे। उसने कहा कि बैठ जाओ। फिर उसने नरक की तस्वीर खींची—इतनी भयानक कि लोगों के रोयें खड़े हो गये। लोगों को लगने लगा कि लपटें आस-पास जल रही हैं, लोगों के हृदय धड़कने लगे। और तब उस फकीर ने पूछा कि अब खड़े हो जायं, कौन-कौन लोग स्वर्ग में जाना चाहते हैं। सभी लोग खड़े हो गये, सिर्फ एक आदमी को छोड़कर। उस फकीर ने पूछा : हद हो गई ! तुम्हारा क्या इरादा है ? तुम स्वर्ग नहीं जाना चाहते हो ? उसने कहा कि जाना तो चाहता हूं, लेकिन इतनी जल्दी नहीं। और आपकी बातचीत

से ऐसा लगता है कि 'बस' बिलकुल तैयार है, बाहर खड़ी है बस, यहां हां कहा कि वहां बस में बिठाया ! इतनी जल्दी नहीं।

तुम भी जब ध्यान करने जाते हो, तो तुम अपने मन से पूछना; तुम्हारा मन पूरे वक्त कह रहा है कि इतनी जल्दी नहीं। तुम ध्यान में असफल होते हो, इसलिए नहीं कि ध्यान कठिन है। ध्यान में असफल होते हो, क्योंकि तुम पहला कदम भी उठाते नहीं। तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो। तुम सिर्फ खेल कर रहे हो—पैर उठाने का, उठाते नहीं क्योंकि तुम्हारा मन भीतर से कह रहा है कि इतनी जल्दी नहीं। अभी संसार में और रस बाकी है। अभी कुछ भोगने को शेष है, अभी कुछ जानने को बाकी है। इतनी जल्दी नहीं। अभी वक्त है। इतनी जल्दी भी क्या है !

तुम अगर सच में ही पहला कदम उठाने को राजी हो, तो ममोन ने ठीक कहा कि रास्ता ? सब बकवास है। कोई रास्ता नहीं है। न छड़ी से खींच कर रास्ता बताया जा सकता, न पंखे से हिला कर रास्ता बताया जा सकता। रास्ता है ही नहीं पागल ! पहला कदम उठा नहीं कि मंजिल आ जाती है। उठा नहीं कि मंजिल आ जाती है। उठने से नहीं आती; बस, उठने का ख्याल काफी है। तुम साधक हो, तुम्हारे विचार के कारण। तुम सिद्ध हो जाते हो, तुम्हारे निर्विचार के कारण। बस, एक हल्का-सा कदम वह भी पूरा नहीं उठाते।

और इसके पहले कि जीभ हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है। क्योंकि जीभ के हिलने से जो भी कहा जायेगा, वह सत्य नहीं हो सकता। फिर चाहे कोई छड़ी को हिला कर बतावे, उसने भी बाहर के जगत का प्रयोग किया। और भीतर की घटना को बताने के लिए बाहर का जगत संकेत का काम भी नहीं कर सकता। फिर चाहे कोई पंखा हिलाये, उसने भी स्थूल का उपयोग किया—सूक्ष्म को दर्शाने के लिए। कोई स्थूल सूक्ष्म को दर्शा नहीं सकता।

'शब्द बोले जायं, उसके पहले ही वक्तव्य पूरा हो जाता है।' ममोन कह रहा है इसके पहले कि केम्बो की छड़ी घूमी, रास्ता बता दिया गया। और इसके पहले कि उमोन का पंखा मटका, सब दिशाओं को दिखाने, इसके पहले कि पंखा हिला, उसी वक्त समझ लेना था।

वह जो सत्य का वक्तव्य है, वह व्यक्ति के भीतर है, वह उसकी अन्तरात्मा है। जब तुम बुद्ध-पुरुष के पास जाओ, तो प्रश्न मत पूछना,

उसे देखना। वह जब बोलता नहीं है, तब उसे देखना। क्योंकि वहीं असली वक्तव्य है। जब उसकी छड़ी नहीं हिलती, तभी वह शून्य है। छड़ी भी हिली, तो शून्य में आकृति आ गई। कुछ तो 'हो' गया। कम्पन हो गया। बात झूठी हो गई।

जब बुद्ध पुरुष के पास जाओ, तो उसके पंखे के लिए रास्ता मत देखना, जब वह सब दिशाएं दिखायेगा। क्योंकि जिसे दिखाना पड़े, वह सब दिशाओं में नहीं हो सकता। सब दिशाओं में हम अभिव्यक्त कैसे कर सकते हैं! जिसको भी हम अभिव्यक्त करेंगे, वह सीमित हो जायेगा। अभिव्यक्ति सीमा है, परिभाषा है।

ममोन ने बात और भी उलझा दी। सच यह है कि जितना सुलझाओ, उतनी बात उलझती है। क्योंकि सुलझाते तुम बुद्धि से हो। और बुद्धि उलझने का उपकरण है। जिस दिन बुद्धि को छोड़ते हो, उस दिन बात सुलझ जाती है। बात सुलझी ही थी।

यह मामला कुछ ऐसा है कि तुम एक रंगीन चश्मा लगाकर जगत् को देख रहे हो। सब तुम्हें नीला-नीला दिखाई पड़ता है। और तुम उसी चश्मे से और गौर से देखने की कोशिश करते हो, ताकि नीला न दिखाई पड़े। तुम जितने ही गौर से उस चश्मे से देखते हो, जगत और नीला दिखाई पड़ता है। 'चश्मा' उतार कर तुम नीचे रख दो, जगत का नीलापन खो जाता है।

बुद्धि से जब तक देखोगे, जगत एक समस्या है। जगत समस्या नहीं है। बुद्धि से देखने में सारा उपद्रव है। बुद्धि रंग देती है। और बुद्धि का रंग समस्या है। वह हर चीज में से समस्या उठाती है।

बुद्धि का स्वभाव प्रश्न निर्मित करना है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे बुद्धि में सवाल लगते हैं, प्रश्न लगते हैं। बुद्धि को हटा दो। सनातन से कभी कोई प्रश्न नहीं रहा है।

कभी कोई प्रश्न था ही नहीं अस्तित्व में। अस्तित्व निष्प्रश्न है। अस्तित्व साफ है, रहस्य खुला है। वहां कुछ भी उलझा नहीं है। तुमने पूछा कि तुम उलझे।

बुद्ध के पास कोई आया—सवाल लेकर आया था। बुद्ध ने कहा: तुमने पूछा, तो फिर सुलझाना मुश्किल है। तुम चुप रहो। तुम पूछो ही मत। साल भर रुक जाओ। साल भर बिलकुल चुप रहो और पूछो मत। फिर साल भर बाद पूछ लेना, फिर मैं जवाब दे दूंगा।

वह आदमी बहुत जगह भटक चुका था। बहुत जवाब उसने पाये

थे। लेकिन जवाब अभी मिला नहीं था। भटकन अभी जारी थी। सुलझाये थे लोगों ने हल, लेकिन समाधान हुआ नहीं था। समस्या कायम थी। उसने सोचा : चलो, यह भी प्रयोग करके देख लो। साल भर प्रयोग करके देख लो। साल भर की ही बात है। उसने कहा : ठीक, तो साल भर बाद आप जवाब देंगे। बुद्ध ने कहा, निश्चित।

जब यह बात ही चल रही थी, तब एक भिक्षु पास के वृक्ष के नीचे बैठा खिलखिल कर हंसने लगा। उस आदमी ने पूछा : क्या बात है ? उसने कहा : धोखे में मत पड़ना। इसी चक्कर में हम पड़ गये थे। कई साल बीत गये, इस आदमी ने जवाब न दिया। उस आदमी ने बुद्ध से कहा : यह आदमी क्या कह रहा है ? बुद्ध ने कहा : इस ने पूछा ही कहां साल भर के बाद। शर्त यह थी कि तुम पूछोगे साल भर बाद, हम जवाब देंगे। उस आदमी ने कहा : वही चाभी है इनकी। पूछना हो, तो अभी पूछ ले। क्योंकि साल भर अगर चुप रह गया तो चुप्पी आ जाती है। फिर कोई पूछता ही नहीं। बुद्ध ने कहा : मैं अपने वचन पर दृढ़ रहूंगा। जब तू पूछेगा, जवाब दूंगा।

साल भर बीता। और बुद्ध ने ठीक साल भर के बाद सुबह की भिक्षुओं की सभा में उस भिक्षु को कहा : तू खड़ा हो जा, और पूछ। वह हंसने लगा। उसने कहा : कुछ पूछने को नहीं है। और अब मैं जानता हूं भलीभांति, कि जो भी जानने को था, वह चुप होकर मिल जाता है।

ममोन ने कहा, "इससे पहले कि पहला कदम उठे, मंजिल आ जाती है। और इससे पूर्व कि जीभ हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।"

गुरु के पास उत्तर की खोज में मत जाना। अगर गये, तो तुम गुरु के पास में पहुंच ही न पाओगे। **गुरु के पास चुप्पी की खोज में जाना**—कि कैसे मन को हटा कर रख दो, कैसे बिना मन के जीवन को तुम देख सको। वहाँ कभी भी प्रश्न नहीं रहा है। वहां कोई उलझन ही नहीं है। वहां सब सुलझा हुआ है। वहां एक रत्ती भर भी कोई जटिलता नहीं है। सब कुछ सीधा, साफ और सरल है।

जैसे सूर्य की किरण कांच के टुकड़े से निकलती है, प्रिज्म से निकलती है, तो सात हिस्सों में बंट जाती है; सात रंग पैदा हो जाते हैं, सूरज की किरण सिर्फ है—रंगहीन है। ध्यान रहे, सफेद कोई रंग नहीं है। सफेद रंगहीनता है। काला में कोई रंग नहीं है। काला सभी रंगों

का अभाव है। —मिश्रण नहीं, सभी रंगों का अभाव। सफेद सभी रंगों का भाव है। दोनों रंग नहीं हैं। काला शून्य की भांति है, सफेद पूर्ण की भांति है। दोनों, रंगों के दो तरफ हैं। बीच में सात रंगों का इन्द्रधनुष है। अगर तुम सातों रंगों को जोर से मिला दो तो सफेद बन जायेगा।

छोटे बच्चों को स्कूलों में समझाने के लिए एक वर्तुलाकार चाक बना देते हैं। उस चाक में सात रंग होते हैं। फिर उस चके को जोर से घुमाते हैं। घूमने पर वह चक्का सफेद हो जाता है।

तुम अपने बिजली के पंखे में सात रंग लगा दो, फिर उसे चला दो—पंखा सफेद हो जायेगा। जब सातों रंग जोर से घूमेंगे और मिल जायेंगे तो सफेद हो जायेंगे।

सूरज की किरण सफेद है। सभी रंगों की पूर्णता है वहां। कोई रंग नहीं है वहां। क्योंकि सभी रंग एक दूसरे को काट देते हैं, अभाव रह जाता है।

सूरज की किरण शंकर के ब्रम्ह जैसी है। या फिर तुम जब सभी रंगों को अलग कर लो तो काला बचता है। इसलिए जहां प्रकाश नहीं होता, वहां काला है। काला इसलिए बच रहता है कि प्रकाश न हो तो रंग पैदा नहीं हो सकते। वह भी अभाव है। वह बुद्ध के शून्य जैसा है। इन दोनों के बीच में सात रंगों की दुनिया है। —इन्द्रधनुष का फैलाव है। और इन्द्रधनुष से ज्यादा झूठी तुमने कोई चीज देखी है? दीखता है आकाश में—एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ। और अगर तुम जाओ, तो खो जाता है। मुट्ठी बांधो तो पकड़ में नहीं आता।

इन्द्रधनुष भ्रम का प्रतीक हो गया है। तो ज्ञानियों ने कहा कि जो संसार में भटक रहा है, वह वासनाओं के इन्द्रधनुष पकड़ने की कोशिश कर रहा है। जितने तुम पास जाते हो, उतने ही वे हट जाते हैं। सदा दिखाई पड़ते हैं—बड़े रंगीन कि अगर घर में ले आयें, तो घर रंगीन हो जायेगा। फूल ही फूल खिल जायेंगे घर में। लेकिन इन्द्रधनुष को पकड़ने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि वह है नहीं। वर्षा के दिनों में जब आकाश में पानी की बूंदें लटकी होती हैं वायुमंडल में, तो सूरज की किरण पानी की बूंदों से निकल कर टूट जाती है सात हिस्सों में, इससे इन्द्रधनुष निर्मित हो जाता है।

मन एक प्रिज्म है। इस जगत में इतने रंग दिखाई पड़ रहे हैं, वे तुम्हारे मन के प्रिज्म से टूटकर, मन की बूंद से सारा इंद्रधनुष निर्मित हो रहा है।

तुम मन को हटाओ—इन्द्रधनुष खो जाता है। मन के हटते ही या तो सफेद रह जाता है, वह तुम्हारी व्याख्या है। या काला रह जाता है, वह भी तुम्हारी व्याख्या है।

कुछ ज्ञानियों ने कहा : परमात्मा प्रकाश की तरह है। कुछ ज्ञानियों ने कहा : परमात्मा महान अंधकार की भांति है। तुम्हारी पसंद की बात है। तुम अगर थोड़े भयभीत व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे : परमात्मा प्रकाश की भांति है। अगर तुम थोड़े निर्भीक व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे : परमात्मा गहन अंधकार की भांति है। चूंकि दुनिया में भयभीत लोग ज्यादा हैं, इसलिए परमात्मा को प्रकाश की भांति मानने वाले लोग ज्यादा हैं। अंधकार की भांति मानने में तुम्हें डर लगेगा। लेकिन दोनों संभावनायें हैं : शून्य अर्थात् अंधकार; पूर्ण अर्थात् प्रकाश।

और तुम्हारे मन के द्वारा अगर तुम देखो तो फिर रंग ही रंग फैल जाते हैं, फिर बड़ी उलझन खड़ी होती है। फिर इन्द्रधनुष खड़े हो जाते हैं। मन को हटाते ही सात खो जाते हैं और एक रह जाता है।

यह जो ममोन ने कहा, इसे बहुत गहरे में डूब जाने देना। 'इसके पहले कि पहला कदम उठे मंजिल आ जाती है।' तुम्हें कहीं जाना नहीं है; मार्ग पूछो मत। तुम वहीं खड़े हो, जहां मंजिल है। 'तुम जैसे हो...।'

इससे ज्यादा कठिन बात नहीं हो सकती, क्योंकि हम सब अपनी निन्दा में लगे हुए हैं और तुम्हारे धर्म-गुरु तुम्हें निन्दा सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं : तुम पापी हो। वे कह रहे हैं तुम अधर्मी हो, तुम नारकीय जीव हो। तुम्हारे धर्म-गुरू तुम्हारी जितनी निन्दा कर रहे हैं, उतनी निंदा कहीं और नहीं हो रही है।

तुम्हारे मंदिर तुम्हें ग्लानि से भर रहे हैं। तुम्हारे धर्म-शास्त्र तुम्हें गहरी आत्मपीड़ा, आत्म आलोचना से भर रहे हैं। जबकि सचाई बिल्कुल दूसरी है। सचाई यह है कि तुम जहां हो, वहां रत्ती भर कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस, जरूरी है —जरा-सा होश, जरा-सा स्मरण, कि तुम कौन हो।

कभी रास्ते के किनारे खड़े होकर एक छोटा-सा प्रयोग करना। रास्ता चलता है, लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। तुम उन्हें देख रहे हो और तुम सोचते हो कि—तुम उन्हें देख रहे हो। लेकिन तुमने कभी उन्हें देखा ? तुम उन्हें देखोगे कैसे ! रास्ते के किनारे खड़े होकर देखना कि तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता है। तुम अदृश्य हो। और जिसे वे देख रहे

हैं, वह तुम्हारी दृश्य खोल है। तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता। ये इतनी आंखें, जो रास्ते से गुजर रही हैं—तुम्हें नहीं देखतीं, सिर्फ परिधि को छूती हैं। तुम अस्पर्शित रह जाते हो।

तुम कौन हो? यह जो दिखाई नहीं पड़ रहा है किसी को भी। रास्ते पर खड़े हो, भरे बाजार में और तुम्हारे भीतर जो चेतना है, वह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ रही है—अदृश्य है। इसका स्मरण थोड़ा भरने देना कि मैं अदृश्य हूं, मुझे कोई भी नहीं देख रहा है। मुझे कोई देखना भी चाहे तो देख नहीं सकता। और जिसे लोग देख रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। वह तो केवल देह है, जो कल जवान थी, आज बूढ़ी है। कल थी, कल नहीं हो जायेगी। देह ऊपर की खोल है, वह मेरा वस्त्र है।

मैं कौन हूं? उस भरे बाजार में तुम अपने पर ख्याल रखना, अचानक जैसे सारा फोकस बदल जाये, जैसे ज्ञान की सारी की सारी प्रक्रिया बदल जाय, शरीर से आत्मा की तरफ तुम्हारा रुख हो जाये। एक क्षण को भी अगर ऐसा हुआ, तो उस भरे बाजार में तुम अकेले हो जाओगे। सब खो जाता है। तुम्हीं हो—अत्यन्त अकेले।

यह जो स्थिति है तुम्हारी—यही स्थिति सिद्ध की है। यह तुम्हें क्षण भर रहेगी, फिर चूक जाओगे तुम। फिर झपकी लग जायेगी। फिर तुम लोगों को देखने लगोगे। फिर तुम समझने लगोगे कि लोग तुम्हें देख रहे हैं। सिद्ध की यह स्थिति सदा बनी रहती है। तुम्हारी यह स्थिति कभी क्षण भर बनती है और खो जाती है। लेकिन यह स्थिति तुम्हारे भीतर है। तुम भूल जाओ, तो भी उसे खो नहीं सकते।

तुम जैसे हो वैसे परिपूर्ण हो। कमी तुममें जरा भी नहीं है। सिर्फ स्मरण चाहिए। और इस स्मरण को लाने के लिए जरूरी है कि तुम थोड़ा अपने को हिलाओ और जगाओ। ध्यान के प्रयोग जागरण के प्रयोग हैं—होश, अवेयरनेस के प्रयोग हैं।

तुम बाजार में यह प्रयोग करना। बाजार से अच्छी जगह तुम हिमालय पर भी न पा सकोगे। बाजार में तुम दूसरों पर ध्यान रखना और देखना कि वे तुम्हें देख रहे हैं और फिर भी कोई तुम्हें नहीं देख रहा है। कोई तुम्हें देख नहीं सकता। तुम अदृश्य हो। यहां, इस बीच बाजार में खड़े बिलकुल अकेले हो, इस भीड़ के बीच अत्यन्त एकाकी हो। धीरे-धीरे भीड़ दूर होती जायेगी। जैसे सपना हो गई। जैसे-जैसे तुम अपने करीब

आओगे, भीड़ दूर होती जायेगी। कई बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि भीड़ करीब आई, दूर हुई; करीब आई, दूर हुई। कई बार बाजार की आवाजें बहुत दूर सुनाई पड़ने लगेंगी, जैसे कहीं किसी दूसरे गांव में हो रही हों। जब तुम अपने करीब होओगे, बाजार दूर हो जायेगा। जब तुम अपने से दूर होओगे, बाजार करीब आ जायेगा। और पूरे समय तुम्हारा फोकस बदलेगा। एक क्षण को भी अगर—जिसको कबीर ने कहा है कि ऐसी तारी लगी—अगर एक क्षण को भी वहां भीतर जागना हो जाये, तो बाहर तुम 'सो' जाओगे। इसलिए कबीर ने कहा है—तारी। क्योंकि तुम बाहर जगे हुए हो, भीतर सोए हो। जब भीतर जागोगे, बाहर सो जाओगे।

जैसे ही भीतर की तारी लगी, तुम सिद्ध हो। जैसे ही तुम बाहर जागे और भीतर सो गये तुम साधक हो।

साधक और सिद्ध में जो फासला है, वह बस इतना ही है। तुम्हारी आंखें जब बाहर को देखती हैं, तब तुम साधक हो, जब भीतर को देखती हैं, तब तुम सिद्ध हो।

'पहला कदम उठता नहीं है कि मंजिल आ जाती है। जीभ हिलती नहीं कि वक्तव्य पूरा हो जाता है।'

●

अनादि ★

कहने को अब शब्द नहीं वह कैसा है ?
वह ऐसा है न वैसा है, सब अपने-अपने जैसा है।
राही हूं मैं उसके पथ का वही मध्य में बैठा है।
चाह नहीं है, आह नहीं है, अब दूसरी कोई राह नहीं है।
चलना ही मात्र चलना है, थकने का अब नाम नहीं है।
तुम भी देखो, तुम भी जानो फिर अपने 'मैं' को पहचानो।

□ डा. सुदर्शनधारी
मोतीहारी (बिहार)

मुखर हुए जब अंतस बोल

(प्रस्तुत दो भाव-गीत प्रेममय भगवान को समर्पित हैं।)

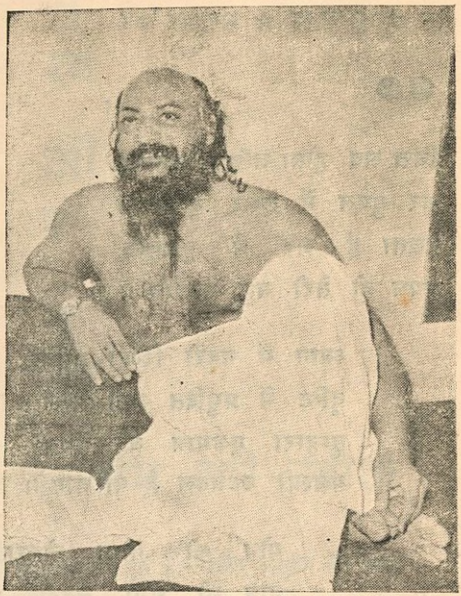

●

भगवत्ता को प्राप्त भला कैसे हो पाता।
गति में अगति, अगति में गति यदि ना उपजाता॥
वाद और प्रतिवाद सभी से परे हुआ जो।
नमस्कार करते हैं हम ऐसे प्रभुवर को॥
श्री हो जिसकी व्याप्त आज जन-जन के मन में।
रमा रहे प्रतिक्षण धर्म की ऊर्ध्व गति में।
जन जीवन की सुप्त चेतना की जागृति में॥
नीले अंबर में सुरम्य सूरज प्राची का।
शारद पूर्णिमा का प्रमुदित रजनीश ऋषि सा॥
कीर्तिमान तोड़े हैं तुमने अवतारों के।
जय जय हे रजनीश अविधि के विधि विधाता।
यही महास्वर गूंजे "जय रजनीश तथाता"॥

चित्त जब होता अधिक अशान्त,
कर युगल में लेकर युक्तांद ।
देखता हूं जब मैं मुखपृष्ठ,
प्रथम ही तेरी मधु मुस्कान ।।

ध्यान में गहरी दिव्या शान्ति,
दृष्टि में प्रमुदित जागे प्राण ।
तुम्हारा एकमात्र वह 'मित्र',
यशस्वी उज्जवल है परिधान ।।

योग की गीता दोहराई
ज्ञान की गंगा लहराई ।
तेरी 'भगवत्ता' का गुणगान,
करें हम दिव्यज्ञान में स्नान ।।

काव्यमय भाषा में उपलब्ध,
तुम्हारी वाणी के ये वाण ।
हृदय तक हो जाते हैं विद्ध,
करें नवजीवन का निर्माण ।।

तुम्हें जानू कैसे ? हे ईश !
आज ये कसक उठी है टीस ।
तेरे पथ में अब, हे रजनीश !
करेंगे हम तो महाप्रयाण ।।

□ अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'
घंसोर, सिवनी (म.प्र.)

सुख और दुख

एक तीसरे आयाम की खोज

[सुख और दुख जीवन के दो सनातन द्वंद्व हैं—और मनुष्य का मन जीवन भर इनमें उलझा रहता है, लेकिन कोई स्वस्थ हल आज तक सामने नहीं आया।

प्रस्तुत प्रवचन मनस तत्व वेत्ता भगवान श्री के द्वारा जिस अनूठे ढंग से हमारे जीवन के समक्ष रखा गया है, उससे न केवल हम सुख और दुख के आयाम को समझेंगे, वरन् जीवन के एक तीसरे ही तल को छुयेंगे। —सं०]

शरीरों के बीच में घिरा है जो शून्य, शरीरों की पर्तों के बीच बंध गया है जो अस्तित्व, उस तक पहुंचने के लिए सुख दुःख को समझ लेना अत्यन्त जरूरी है, क्योंकि सुख दुःख के कारण ही वह बंधा है। शरीर नहीं बांधता है। शरीर नहीं बांध सकता है। लेकिन शरीर से सुख मिल सकता है यह धारणा ही बांधती है। और अगर कारागृह से भी सुख मिल सकता है तो कारागृह भी बांध लेगा। यहां एक बात समझ लेनी जरूरी है कि कारागृह में तो कोई और आपको बंधन में डालता है, जिस कारागृह की हम यहां चर्चा कर रहे हैं, उसमें कोई और आपको बंधन में नहीं डालता, आप ही अपने को बंधन में डालते हैं। इसलिए बंधन तोड़ना बहुत मुश्किल भी है और आसान भी है। मुश्किल इसलिए कि जब आपने ही अपने को

बंधन में बांधा है तो बांधने में जरूर रस पा रहे होंगे, नहीं तो बांधने का कोई कारण नहीं। कोई दूसरा बांधता तो आपको उस बंधन में रस नहीं होता। आपने ही बांधा है तो बंधन को प्रीतिकर समझ कर बांधा है, इसलिए तोड़ना मुश्किल है। आसान भी है, क्योंकि आपने ही बांधा है इसलिए जिस क्षण निर्णय करें उसी क्षण टूट भी सकता है। किसी और ने बांधा हो तो आपके मुक्त होने की आकांक्षा पर्याप्त नहीं थी बंधन को तोड़ने के लिए, संघर्ष करना पड़ता। और फिर भी निर्णय इससे होता कि कौन शक्तिशाली है। अगर बांधने वाला शक्तिशाली होता तो बंधन से छूटना जरूरी नहीं था, कि हो ही जाता। हमने ही बांधा है अपने को तो बंधन में जरूर कोई रस होगा। बंधन व्यर्थ नहीं हो सकता चाहे रस भ्रांति क्यों न हो? चाहे रस प्रतीत ही क्यों न होता हो? वस्तुतः ना ही हो फिर भी होगा, स्वप्नवत् ही सही, चाहे मृग-मरीचिका दिखाई पड़ती हो मरुस्थल में, न हो वहां जल लेकिन दिखाई पड़ता है, और प्यासे को दिखाई पड़ना भी काफी है। और प्यासे को यह निर्णय करने की सुविधा नहीं है कि वह तय करे कि जो जल दूर दिखाई पड़ता है वह है भी या नहीं? दौड़ेगा—यह सारी दौड़ सुख-दुःख के आस-पास है। इसलिए सुख-दुःख के तत्व में भीतर प्रवेश कर जाना जरूरी है, शायद सुख दुःख की संभावना ही बंधन का कारण है।

सुख क्या है? और दुःख क्या है? ऊपर से देखने पर लगता है दोनों बड़े विपरीत हैं, एक दूसरे के बिलकुल दुश्मन हैं, ऐसा है नहीं। सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए एक मजे की घटना घटती है लेकिन हम ख्याल नहीं कर पाते कि जिसे हम आज सुख कहते हैं वही कल दुःख और दुःख सुख हो सकता है। कल तो बहुत दूर है जिसे हम सुख कहते हैं वह क्षण भर बाद दुःख हो सकता है। यह भी हो सकता है कि जब हम कह रहे हैं यह सुख है तब ही वह दुःख हो गया हो।

जो गहन खोज करते हैं मनुष्य के मन की वह तो यह कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति कहता है यह सुख है तब ही वह दुःख हो गया होता है। क्योंकि जब तक वह सुख होता है तब तक यह कहने की सुविधा नहीं मिलती कि यह सुख है वह जब क्षीण होने लगता है तभी कहा जाता है।

सुख दुःख के संबंध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि वे विपरीत नहीं हैं। वे एक दूसरे में रूपांतरित होते रहते हैं, लहर की भांति रहते हैं। कभी इस किनारे कभी उस

किनारे, हम सब जानते हैं। हमने अपने सुखों को दुःख में परिवर्तित होते देखा है। लेकिन देखकर भी हमने निष्कर्ष नहीं लिया। शायद निष्कर्ष लेने के लिए हम अपने मन को अवसर नहीं देते। एक सुख दुःख बन जाता है तब हम तत्काल दूसरे सुख की तलाश में चल पड़ते हैं, रुकते नहीं, ठहर कर देखते नहीं कि जिसे कल सुख जाना था वह आज दुःख हो गया है, तो ऐसा तो नहीं है कि हम जिसे भी सुख जानेंगे वह फिर दुःख हो जायेगा ? ऐसा मन कहता है कि यह हो गया दुःख, कोई बात नहीं। कहीं कोई भूल हो गई, यह दुःख रहा ही होगा, हमने भ्रांति से सुख समझ लिया था।

यह एक बड़े मजे की बात है कि जिस चीज को आप जितना बड़ा सुख मानते हैं वह उतना बड़ा दुःख बदलेगा, जब बदलेगा। जिस चीज को आप ज्यादा सुख नहीं मानते, वह बदलकर ज्यादा दुःख नहीं हो सकता, अनुपात वही होगा। इसलिए उदाहरण के लिए कहता हूं—अगर किसी का विवाह उसके माता-पिता ने कर दिया है तो उसमें बहुत सुख की अपेक्षा ही नहीं होती, इसलिए दुःख भी फलित नहीं होता। प्रेम विवाह जितना दुःख लाता है इतना दुःख आयोजित विवाह नहीं ला सकता क्योंकि आयोजित विवाह में कभी बहुत सुख की आशा ही नहीं, दुःख टूटेगा क्या ? बिगड़ेगा क्या ? बिखरेगा क्या ? जितनी बड़ी अपेक्षा उतना बड़ा दुःख फलित हो सकता है।

इसलिए पश्चिम ने सोचा था कि पचास-सौ वर्षों में कि प्रेम विवाह बहुत सुख ले आयेगा। उन्होंने ठीक सोचा था, लेकिन उन्हें दूसरी बात का पता नहीं था कि प्रेम-विवाह बहुत दुख भी ले आयेगा और अनुपात सदा बराबर होगा। जितना बड़ा सुख अपेक्षा में होगा, जब रूपांतरण होगा उतना ही बड़ा दुःख होगा।

पूरब के लोग होशियार थे इस लिहाज से। उन्होंने एक दूसरी कोशिश की, और उन्होंने कोशिश यह की कि सुख की अपेक्षा को ही कम करो ताकि जब परिवर्तन हो और परिवर्तन तो होगा ही तो बहुत दुःख फलित न हो। आयोजित विवाह न तो सुख दे सकता है ज्यादा, न दुःख दे सकता है ज्यादा। इसलिए आयोजित विवाह चल सकता है। प्रेम विवाह चल नहीं सकता क्योंकि इतने बड़े सुख की आशा बड़े दुःख में बदल जाती है। चाहा था सुख और खाई उपलब्ध हो जाती है, तो चलना मुश्किल है।

आदमी चल सकता है समतल जमीन पर जहां बहुत खाईयां और बहुत शिखर नहीं हैं। जहां शिखरों

में से खाईयों में गिरना पड़ता हो उस पर ज्यादा देर चला नहीं जा सकता इसलिए सिर्फ सौ वर्ष के प्रयोग में पश्चिम प्रेम विवाह के बाद न विवाह की हालत में आया चला जा रहा है। पांच हजार वर्ष तक पूरब बिना प्रेम विवाह के बराबर विवाह को चलाया। समतल भूमि थी न बड़ी खाइयां थीं न बड़े शिखर थे। लेकिन पश्चिम सौ वर्ष भी प्रेम-विवाह की धारणा को चलाने में समर्थ नहीं हो पाया। अब वहां का विचारशील आदमी कह रहा है यह विवाह ही छोड़ देने जैसा है, विवाह को रखने की जरूरत नहीं है। अगर सुख ज्यादा चाहिये तो विवाह छोड़ दो। अब फिर वही भूल हो रही है क्योंकि ख्याल यह था कि सुख अगर ज्यादा चाहिये तो आयोजित विवाह छोड़ दो, प्रेम विवाह ज्यादा सुख देगा। अब प्रेम विवाह ने ज्यादा सुख कुछ क्षण भर को दिया और पीछे बड़े दुःख की खाई छोड़ गया। ऐसे सुख की तुलना में यह खाई बहुत बड़ी मालूम पड़ती है।

अब फिर वही भूल पश्चिम की बुद्धि कर रही है वह यही है कि अगर और ज्यादा सुख चाहिये तो विवाह ही छोड़ दो। उन्हें पता नहीं कि वह और ज्यादा सुख और बड़े दुःख में छोड़ जाएगा। पर वह भूल स्वाभाविक है क्योंकि हम सुख दुःख को विपरीत मानते हैं, कन्वर्टबिल नहीं कि वह एक दूसरे में बदल जाते हैं, बदलते ही रहते हैं, एक क्षण को भी बदलाहट रुकती नहीं। इस समझ के कारण पूरब ने एक और प्रयोग किया। उसने यह प्रयोग किया कि जब सुख दुःख में बदल जाता है तो क्या हम दुःख को सुख में नहीं बदल सकते ?

तपश्चर्या का सूत्र इस समझ से निकला। बहुत अनूठा सूत्र है तपश्चर्या का यह। इस समझ से निकला कि जब सुख दुःख में बदल जाता है तो कौन सी अड़चन है कि दुःख सुख में न बदल जाय ? और हमने दुःख को भी सुख में बदल कर देखा। अगर आप दुःख में रहने को राजी हो जायं तो दुःख सुख में बदलने को तैयार हो जाता है। आपके राजी होने से बदलाहट होती है। आप जिसमें भी रहने को राजी हो जायें वही बदलने को तत्पर हो जाता है। असल में आपके राजी होते ही बदलाहट शुरू हो जाती है। जैसे ही आपने कहा कि बस सुख मिल गया अब मैं इसमें ही रहना चाहता हूं, अब मैं इसको बदलना नहीं चाहता, बस समझिये कि बदलाहट शुरू हुई। अगर आप दुःख में भी यह कह सकें कि दुःख मिल गया मैं इसमें राजी हूं, अब मैं इसे बदलना नहीं चाहता। यही

तपश्चर्या का सूत्र है कि दुःख आया, मैं राजी हूं, मैं बदलना नहीं चाहता, और बड़े मजे की बात है कि दुःख सुख में बदल जाता है, और अगर हमें दोनों में ही चुनना हो तो सुख को दुःख में बदलने की कला के बजाय, दुःख को सुख में बदलने की कला ज्यादा बुद्धिमानी है। क्यों? उसका कारण है, क्योंकि दुःख को जो सुख में बदल लेता है, उसका सुख फिर दुःख में नहीं बदल सकता। उसका कारण है कि जो दुःख तक को सुख में बदल लेता है उसका सुख कैसे दुःख बन सकेगा? जो दुःख तक को सुख में बदल लेता है उसका सुख कल उस पर काम नहीं कर पाएगा। बदलाहट होगी नहीं इससे, असल में जो दुःख को सुख में बदल लेता है वह सुख की आकांक्षा ही छोड़ देता है, तब ही बदल पाता है। और जब सुख की कोई आकांक्षा नहीं होती तो सुख दुःख में बदलने की क्षमता खो देता है।

आकांक्षा से क्षमता निर्मित होती है। इसे कभी प्रयोग करके देखें और आप बहुत हैरान हो जायेंगे। यह मनुष्य के भीतर रूपांतरण की गहरी कीमियों के सूत्रों में से एक है। जब दुःख आपके ऊपर आये तो उसे स्वीकार कर लें। इन्कार से ही वह दुःख है, अस्वीकार से ही वह दुःख है। उसे स्वीकार कर लें समग्र मन से, राजी हो जायें, आलिंगन कर लें और कह दें कि अब तुझे छोड़ने का कोई मन नहीं, तेरे साथ ही रहेंगे, और आप अचानक पायेंगे कि सब बदल गया जिसे आपने दुःख की तरह देखा था वह सुख हो गया।

सुख दुःख में बदल सकता है, दुःख सुख में क्यों? क्योंकि वह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, और बदल दिये जाते हैं। इसके बदलने का क्या कारण है? असल में जब एक आदमी सुख में जीता है तो सुख से भी ऊब जाता है.... उससे ऊब पैदा हो जाती है। ऊब स्वाभाविक है। सुख भी उबाने लगता है। जिसको आप प्रेम करते हैं और चाहते हैं कि चौबीस घंटे इसके साथ रहें, अगर चौबीस घंटे साथ रहने मिल जाय, तो मन करने लगे, कुछ देर को फुर्सत मिले? कुछ देर को एकांत मिले? कुछ देर को तो पीछा छूटे? यह बिल्कुल स्वाभाविक होता है, जिसके साथ कभी सुख चाहा था आज उससे थोड़े अलग होंगे, तो सुख मिलेगा। ऊब खड़ी हो जाती है, उससे ऊबने लगता है। जिसे भी आप जान लेते हैं उससे जी ऊबने लगता है। जिसे भी आप पूरा जान लेते हैं उसीसे जी ऊबने लगता है। मन किसी नये की तलाश पर निकल जाता है। रुचिकर भी

अरुचिकर हो जाता है, आज जो भोजन अच्छा लगा है भूलकर कल उसे मत करना परसों उसे मत दोहराना नहीं तो रुचि, अरुचि बन जाएगी।

यह ऋषि कहता है जो रुचिकर वस्तु की इच्छा है वही सुख है और जो अरुचिकर वस्तु की कल्पना है वही दुःख है। किसी वस्तु को रुचिकर कल्पित करना सुख है और किसी वस्तु को अरुचिकर कल्पित करना दुःख है और रुचि अरुचि में बदल जाती है, अरुचि रुचि में बदल जाती है।

शराब पीने वाले जानते हैं कि शराब पीने में शुरू में स्वाद तो अरुचिकर ही होता है। स्वाद को वे कहते हैं—विकृत करना पड़ता है। वे कहते हैं विकृत करना पड़ता है, स्वाद की बुद्धि ही नष्ट करनी पड़ती है। अगर एक आदमी काफी पीना शुरू करता है तो काफी रुचिकर नहीं मालूम पड़ती, लेकिन पीने वाले कहते हैं, घबड़ाओ मत अभ्यास से रुचिकर हो जाएगी। स्वाद विकृत करना पड़ता है, और आदमी कैसे भी स्वाद विकृत कर लेता है। एक आदमी धूम्रपान शुरू करता है सिवाय धुआं के स्वाद के कुछ भी नहीं मालूम पड़ता पहले दिन। लेकिन कल्पना रुचिकर की है, इतने लोग पी रहे हैं तो बहुत आनन्द पा ही रहे होंगे, क्योंकि इतने लोग ना समझ नहीं हो सकते। और जब पीने वाला, नया पीनेवाला देखता है कि यह जो कहते हैं, पीना बुरा है वह भी पी रहे हैं। वह कहते हैं मजबूरी है लेकिन मत पिओ तब उसे लगता है कि जरूर कोई गहरा राज है, कोई छुपी हुई बात है, कोई सुख जरूर पाया जा रहा है जिससे मैं रोका जा रहा हूं। जब यह पहली दफे पीता है तो दुःखद ही अनुभव है, पहला अनुभव सुखद नहीं हो सकता। ...धुआं ही शरीर में डाल रहा है जो किसी कारण सुखद नहीं हो सकता। खांसी आएगी, बेचैनी होगी, माथा गरम हो जाएगा लेकिन इस आशा में, रुचिकर की आशा में वह सुख की कल्पना किये चला जा रहा है। धीरे-धीरे यह दुःख सुख बन जायेगा, धीरे-धीरे यह दुःख सुख बन जायेगा। अभ्यास से दुःख, सुख हो जाता है, अभ्यास से ही सुख दुःख हो जाता है।

दुःख को भी कोई झेलता चला जाय तो संवेदन-शीलता क्षीण हो जाती है और आदत बन जाती है, दुःख की भी आदतें होती हैं। सुख को अगर झेलना पड़े, तो सुख से ऊब पैदा हो जाती है, उससे भी बेचैनी और छुटकारे की आकांक्षा हो जाती है।

रुचिकर क्या है, अरुचिकर क्या है? इसे हम समझें तो सुख दुःख

कैसे रूपांतरित होते रहते हैं और एक ही चीज के दो पहलू हैं ख्याल में आ जायेगा। .....रुचिकर क्या है? किस बात से इसे आप रुचिकर कहते हैं? ऋषि ने कहा है इंद्रियों के लिए जो अनुकूल है, सानुकूल है, वह रुचिकर है, आपके लिए नहीं। इंद्रियों के लिए जो अनुकूल है वह रुचिकर है और इंद्रियों के लिए जो अनुकूल नहीं है वह अरुचिकर है। संगीत बज रहा है, कान को रुचिकर है क्योंकि उस संगीत की जो चोट है वह कान के लिए अनुकूल है उससे व्याघात पैदा नहीं होता, उपद्रव पैदा नहीं होता, बल्कि विपरीत मन के भीतर चलता हुआ उपद्रव शिथिल होता है, शांत होता है लेकिन जरूरी नहीं कि अगर बहुत शांत व्यक्ति हो तो संगीत भी अरुचिकर है, क्योंकि तब संगीत भी एक व्याघात है, तब संगीत भी एक उपद्रव है।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ सुबर्ट कहा करता था—संगीत के सम्बन्ध में, संगीत जो है वह सबसे कम अरुचिकर ध्वनियों का समूह है, सबसे कम अरुचिकर, सबसे कम उपद्रव है, इसमें है तो उपद्रव। क्योंकि है तो आखिर स्वरों का तादात्मय ही—उसके पार तो नहीं।

चीन में एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ।.....जैसे जैसे संगीत उसका गहरा होता चला गया, फिर एक दिन उसने अपने वाद्य को उठाकर फेंक दिया। दूर-दूर लोक लोकांतर तक उसकी खबर पहुंच गई थी, हजारों मील चलकर लोग उसके पास आते थे। और जब दूसरे दिन सुबह नये यात्री आये उसका संगीत सुनने और उसे उन्होंने बैठा वृक्ष के नीचे देखा, बिना वाद्य के तो उन्होंने पूछा तुम्हारा वाद्य कहां है? तो उसने... कहा अब वाद्य भी संगीत में बाधा हो गया और... ..उसने कहा कि जब संगीत पूर्ण हो जाता है तब वीणा तोड़ देनी पड़ती है। इसका कारण है अगर बहुत ठीक से समझें तो कान के लिए ध्वनियां प्रीतिकर लगती हैं, क्योंकि भीतर की अराजकता में यह ध्वनियां दवा की तरह मालूम पड़ती हैं, सुखद लगती हैं, सांत्वना देती हैं। एक तरह की शांति को जन्म देती हैं, प्रीतिकर हैं। लेकिन अगर संगीत अस्तव्यस्त हो, सिर्फ शोरगुल हो—आवाजों का तो अरुचिकर हो जाता है, क्योंकि कान को पीड़ा होती है। पीड़ा इसलिए होती है कि कान को ध्वनियां सिर्फ बेचैन करती हैं, शांत नहीं करतीं। सारे शरीर में जो हमारी इंद्रियों की—व्यवस्था है, वे बाहर के जगत में जो घटित हो रहा है उसे भीतर ले जाने के द्वार हैं। इन इंद्रियों को जो प्रीतिकर मालूम

होता है वह वही है कि जो इन इंद्रियों को शांत करता है, बस इससे ज्यादा प्रीतिकर, अप्रीतिकर का कोई अर्थ नहीं। लेकिन जो चीज इंद्रियों को आज शांत करती है कल अशांत कर सकती है। क्योंकि इन्द्रियां स्वयं चलित प्रवाह हैं, वे भी बदली जा रही हैं। जैसे एक आदमी नया रेल्वे की नौकरी पर जाता है, स्टेशन पर सोता है, नींद नहीं आती है। ट्रेन की आवाजें हैं, एंजिन की आवाजें हैं, शोरगुल है और सब तरह का उपद्रव है, नींद नहीं आती है, बड़ा बेचैन होता है कान। लेकिन नींद एक जरूरी चीज है, आज नहीं कल इस बेचैनी को एक तरफ रखकर नींद आनी शुरू हो जाती है। लेकिन बहुत जल्दी वह वक्त आ जाता है कि यह आदमी अपने घर नहीं सो सकता, क्योंकि यह सब उपद्रव, इसकी नींद का अनिवार्य हिस्सा हो गया तो यह उपद्रव हो तो ही सो सकता है, यह नहीं हो तो नहीं सो सकता। यह उसका क्रिया-कांड का हिस्सा हो गया, इतना उपद्रव चाहिए ही।

बहुत लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं बड़ी मुसीबत है, बड़ी बेचैनी है, बड़ी अशांति है। मैं भलीभांति जानता हूं कि अगर उनकी सब बेचैनी या सब अशांति छीन ली जाय तो फौरन परमात्मा से यह प्रार्थना करेंगे, बेचैनी वापस दे या अशांति वापस करें—उनको पता नहीं है कि यह उनका क्रियाकांड है, वह उसके बीच ही जी सकते हैं इसलिये अगर उन्हें एकांत में भेज दिया जाय तो दो चार दिन में वे कहते हैं कि वापिस जाना है, यहां बहुत खाली-खाली लगता है, यहां कोई सार नहीं है। सार वहीं है जहां सारा उपद्रव चले, क्यों इन्द्रियों को अगर आप अरुचिकर का भी भोजन दिये चले जायें तो थोड़े दिन में राजी हो जाती हैं। और जब राजी हो जाती हैं तो वही प्रीतिकर हो जाता है जो अरुचिकर मालूम पड़ा था अप्रीतिकर मालूम पड़ा था। अगर आप रुचि का भोजन दिये चले जायें तो रुचिकर बार-बार लेने से धीरे-धीरे इन्द्रियों का स्वाद मर जाता है—वही-वही रोज देने से उसकी संवेदना क्षीण हो जाती है, वही अरुचिकर मालूम पड़ने लगता है।

एक बड़े कवि मुझे मिलने आये थे बातचीत चलती थी तभी एक संगीतज्ञ भी आ गये। उन संगीतज्ञ ने कवि को कहा कि कोई एकाध कविता सुनायें। उन कवि ने कहा क्षमा करें, कविता से बुरी तरह ऊब गया हूं कुछ और ही चले, कविता नहीं। बड़े कवि हैं, कविता से ऊब गये हैं। ऊब ही जायेंगे। और इसलिए अक्सर दुनिया में एक अनोखी घटना घटती

है कि आदमी जिंदगी में कई बार छलांग ले लेता है।

बड़े बुद्धिमान आदमी कई बार बड़े गैर बुद्धिमानी के काम करने में लग जाते हैं, वह सिर्फ बदलाव है, वह सिर्फ बदलाहट है, यह सिर्फ बदलाहट है। ऊब गये हैं। यह कभी-कभी दिखाई पड़ता है कि गांव का एक साधारण आदमी— कुछ कीमत नहीं है, कोई अनुभव नहीं है, कोई गहराई नहीं है, लेकिन हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस उसके चरणों में बैठा है। क्या हो गया है इस हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस को? यह ऊब गया है बुद्धिमानी से। काफी बुद्धि इसने झेल ली। अब यह कोई गैर बुद्धिमानी का काम न करे तो इसे अपने से ही छुटकारा नहीं है। और फिर इसको देखकर न मालूम कितने नासमझ इसके पीछे आयेंगे क्योंकि वे इसे बुद्धिमान समझ रहे हैं, कि जब यह बुद्धिमान जा रहा है कहीं तो अब तो गैर बुद्धिमानों को जाने के लिए रास्ता खुल गया। और उन्हें पता नहीं कि यह जा रहा है सिर्फ इसलिए कि अब यह बुद्धि से बुरी तरह ऊब गया है।

रुचिकर सदा रुचिकर नहीं रहता है। इसके और भी कारण हैं, क्योंकि आप पूरे समय विकसित हो रहे हैं। बच्चा है—खिलौना रुचिकर लगता है लेकिन एक उम्र आ जायेगी कि खिलौना रुचिकर नहीं लगेगा, क्योंकि बच्चा बच्चा नहीं रहा। खिलौने फेंकने ही पड़ेंगे। और यह वही खिलौना है जो अगर टूट जाते तो बच्चा समझता है कि जैसे उसका कोई प्रियजन मर गया है। इन्हीं को वह छोड़ कर एक दिन रह जायेगा। यह उसकी चेतना विकसित हो रही है। जो कल रुचिकर था वह आज रुचिकर नहीं रहा। आज वह नये खिलौने खोजेगा, हालांकि उसे ख्याल में नहीं होगा कि यह भी खिलौने हैं। कल उसने गुड़िया सजाई थी आज वह पत्नी सजायेगा। सजावट वही होगी, ढंग वही होगा। लोग उसकी गुड़िया की प्रशंसा करें यह कल चाहा था, आज उसकी पत्नी की प्रशंसा करें यह चाहा जायेगा। लेकिन गुड़िया थी गुड़िया, इसलिए किसी दिन फेंक दिया तो कठिनाई नहीं हुई, कल यह पत्नी को फेंकना इतना आसान पड़ने वाला नहीं है। और आज नहीं कल, इसके भी पार हो जायेगा मन, तब बेचैनी खड़ी होगी। तब पुराने किये वायदे और आश्वासन बाधा बनेंगे। तब अपने से ही बंधा हुआ आदमी पाता है कि यह तो मैंने ही कहा था अब इसको मुकरना मुश्किल है। यह सजावट भी खो गई अब इसमें भी कोई रस न रहा।

तो रोज हम बदल रहे हैं, रोज हम बदल रहे हैं।

जवान आदमी था, मंदिर अरुचिकर मालूम पड़ता था। निकला था उसके सामने से समझता था पागल इसके भीतर गये होंगे, अभी वेश्यागृह ज्यादा सुखद और प्रीतिकर था—अभी मंदिर बिलकुल ना-समझियों की जमात दिखाई पड़ती थी लेकिन आज नहीं कल मन्दिर सार्थक हो जायेगा।

कॉल गुस्नाक ने अपने जीवन के संस्मरण में लिखा है कि मेरे पास इलाज कराने वाले हजारों मरीज मन के आये हैं, उनमें अधिकतम् वे हैं जो चालीस साल के ऊपर हैं और उनकी एक ही तकलीफ थी, वह यह कि वे मन्दिर का द्वार भूल गये हैं और कोई उनकी अड़चन नहीं। एक ही उनकी बीमारी है कि उन्हें मंदिर का कोई पता ही नहीं है कि मन्दिर भी है। चालीस साल की उम्र के बाद मंदिर का द्वार सार्थक होना शुरू हो जाता है लेकिन वह भी खिलौना है। बच्चे के खिलौने हैं, जवान के खिलौने हैं, बूढ़े के खिलौने हैं। और एक दिन उससे भी ऊब आ जाती है। और जब तक खिलौने से ही कोई मुक्त नहीं हो जाता तब तक उपद्रव में बदलाहट होती रहती है, लेकिन उपद्रव समाप्त नहीं होता। एक जगह ऊबकर व्यक्ति दूसरी जगह जाता है, लेकिन यह आदमी यह नहीं समझ पा रहा कि यह सजावट कब तक! यह कब तक जारी रखनी है! सिर्फ गुड़िया बदलते चले चले जाना है! ख्याल ही नहीं आता कि आज जो सुखद है कल वह अरुचिकर हो जायेगा। तो क्या किया जाय?

रुचि और अरुचि में क्या है, इसे ठीक से समझ लिया जाय। जो आज मेरी इन्द्रियों को इस क्षण में सुखद मालूम पड़ता है, संगीत पूर्ण मालूम पड़ता है, अनुकूल मालूम पड़ता है, उसे मैं कहता हूं सुख। जो आज इस क्षण में इससे विपरीत मालूम पड़ता है, इसे मैं कहता हूं दुःख। सुख को मैं चाहता हूं, दुःख को मैं नहीं चाहता हूं। सुख मुझे मिल जाय पूरा और दुःख मुझे बिलकुल न मिले यह मेरी आकांक्षा है। यह आकांक्षा ही शरीर से बंधने का कारण बन जाती है, क्योंकि शरीर में ही इन्द्रियों के द्वार हैं, उन्हीं से सुख मिलता है और उन्हीं से दुःख रोका जा सकता है। और जब तक कोई सुख दुःख दोनों को समझकर पार न हो तब तक शरीर के पार नही हो सकता। इसलिए पांच शरीरों के बाद तत्काल ऋषि ने सुख दुःख की चर्चा शुरू की है। यह सुख दुःख की चर्चा अर्थपूर्ण है इसलिए कि यह पांच शरीर की चर्चा से कुछ भी न होगा जब तक कि

शरीर को बंधने का राज ही हमारे ख्याल में न आ जाय कि हम बंधते क्यों हैं। इससे विपरीत अगर हम कर सकें उसी का नाम सत्य है। सुख की आकांक्षा न करें, दुःख को हटाने का ख्याल न करें, सुख को भोगें न, दुःख को हटायें न। सुख को जो भोगेगा, दुःख से जो बचेगा वह शरीर से बंधा रहेगा। सुख को जो भोग नहीं करेगा, दुःख मिल जाये तो राजी हो जायेगा वह सत्य को जानकर, शरीर से छटने लगेगा।

सुख की अपेक्षा, दुःख से भय शरीर से बाहर ले जाता है। सुख की अपेक्षा नहीं, दुःख से निर्भय वह इसे भीतर ले जाता है। भोग और तप का यही भेद है। सुख भोगते हैं तो बाहर संघर्ष करना पड़ेगा। सुख को बचाना पड़ेगा और दुःख से बचना पड़ेगा। गहन संघर्ष होगा बाहर इसलिए चेतना को सदा शरीर के बाहर भटकना पड़ेगा। मकानों में, धन में, पदों में, दूसरों में। तप का अर्थ है कि नहीं सुख की कोई आकांक्षा नहीं है क्योंकि बहुत सुख जाने और उनको दुःखों में बदलते देखा, अब सुख को नहीं जानना। और अब दुःखों को भी हटाने की कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि दुःख को हटा-हटाकर देख लिया वह हटता कहां है? वह बना ही रहा चला जाता है उल्टे उसको हटाने में और दुःख भोगना पड़ता है और वह फिर लौट-लौटकर आ जाता है। न ही दुःख को हटाते हैं, न ही सुख को मांगते हैं अब हम राजी हैं जो जैसा है। यात्रा भीतर की तरफ शुरू हो गई, बाहर कोई संघर्ष न रहा। यह अंतर्यात्रा ही शरीरों से छुटकारा दिला सकती है।

सुख-दुख के लिये जो क्रियायें करता है: व्यक्ति, ऋषि ने उसे ही कर्ता कहा है। जो सुख दुःख के लिये क्रियायें करता है, जो भोगता है कि सुख मुझे मिले और दुःख मुझे न मिले यह कर्त्ता है, लेकिन जो कहता है कि जो मिले ठीक, न मिले ठीक, दोनों में भेद ही नहीं करता यह अकर्ता हो जाता है। और जब व्यक्ति अकर्ता होता है, इसी से भाग्य की कीमती धारणा पैदा हुई।

भाग्य का मतलब ज्योतिष से नहीं है, भाग्य का ख्याल बहुत आध्यात्मिक है। उसका हाथ की रेखाओं से कुछ लेना देना नहीं है। उसका भविष्य से कोई संबंध नहीं है। रास्ते के किनारे बैठे हुए ज्योतिषी से संदर्भ ही नहीं है उसका। भाग्य की धारणा ही इससे पैदा हुई—जब मैं कर्त्ता नहीं हूं और चीजें तो हो रही हैं, चीजें तो घटित हो ही रही हैं और मैं कर्त्ता नहीं हूं। क्योंकि कर्त्ता तभी तक मैं होता

हूं जब तक मैं मांगता हूं कि सुख मिले, तब तक संघर्ष करता हूं तो कर्त्ता होता हूं, अब कर्त्ता नहीं रहा। अब जो मिल जाय ठीक है, न मिल जाय ठीक है। मैंने फिकर ही छोड़ दी, मिलने न मिलने की। सुख आये तो मैं फिक्र नहीं करता कि सुख है। दुःख आये तो मैं फिक्र नहीं करता कि दुःख है। धीरे-धीरे भेद ही गिर जाता है और पहचानना ही मुश्किल हो जाता है कि क्या सुख है और क्या दुःख है। दोनों के बीच आदमी निर्लिप्त हो जाता है। ऐसी जो निर्लिप्तता है इसमें कर्त्ता तो खो जायेगा क्योंकि करना तो कुछ बचा नहीं। करना था ही क्या ? एक ही था सुख कैसे पायें और दुःख से कैसे बचें ? वही करना था, अब कर्म का कोई उपाय न रहा फिर भी चीजें तो होती ही चली जाती हैं। जब व्यक्ति कर्त्ता नहीं रह जाता तो परमात्मा कर्त्ता हो जाता है। और जब परमात्मा कर्त्ता हो जाता है तो इस भावदशा का नाम ही भाग्य है। ऐसे व्यक्ति की गर्दन काट दें तो वह कहता है कटनी ही थी। वह उसमें उसको भी दोषी नहीं ठहराता है जिसने काट दी क्योंकि वह मानता है कर्त्ता कोई है नहीं, उसे कटनी ही थी। कर्त्ता विलीन हो गया। ऐसे व्यक्ति को जहर पिला दें तो वह कहता है पीना था, होना था। और जो व्यक्ति जहर पिलाते वक्त भी जानता हो कि होना था, क्या उसके मन में क्षण भर को भी क्रोध आ सकता है उसके प्रति जिसने जहर पिला दिया ? क्योंकि अब वह मानता ही नहीं कि वह कर्त्ता है इसलिए अब दोषारोपण समाप्त हुआ, इसलिए अब कोई जिम्मेवार है यह बात खत्म हुई। अब जो भी हो रहा है वह परम नियति है, इसमें व्यक्ति का कोई लेना-देना नहीं। ऐसा व्यक्ति अगर परम शांति को, परम सन्तोष को उपलब्ध हो जाये तो आश्चर्य क्या ?

जो सुख-दुःख के बीच चुनाव करता है वह कभी सन्तोष को उपलब्ध नहीं होता है। जो सुख-दुःख में भेद करता है वह कभी सन्तोष नहीं पा सकता। जिसने सुख-दुःख का भेद ही छोड़ दिया, वह सन्तुष्ट है। इसलिए लोग जो समझाते रहते हैं बड़ी कीमती बातें भी कभी बहुत ना-समझी के आधार बन जाती हैं। लोग कहते हैं सन्तोष में ही सुख है, पागल हैं बिलकुल। उन्हें संतोष का पता ही नहीं, अभी भी वे सुख को ही सन्तोष के साथ एक कर रहे हैं और वह जिसको समझा रहे हैं, इसलिए समझा रहे हैं कि अगर सुख चाहते हैं तो सन्तोष रखो और जो सुख चाहता है वह सन्तुष्ट हो नहीं सकता क्योंकि

सुख असन्तोष का सूत्र है। जो सुख चाहता है वह दुःख से घिरेगा ही। सुख सन्तोष नहीं है, सन्तोष सुख नहीं है। सन्तोष सुख दुःख का सार है और सन्तुष्ट वही है जिसने सुख दुःख का भेद ही त्यागा। सन्तोष दोनों का अतिक्रमण करना है इसलिए आप अगर कभी सुख मानकर सन्तोष कर रहे हों तो भ्रांति में मत पड़ना, आपका सन्तोष निपट धोखा है।

नियति-भाग्य, परम आध्यात्मिक शब्द हैं। व्यक्ति अहंकार से मुक्त हुआ यह उनका प्रयोजन है, अस्वीकार नहीं है अब। शिकायत नहीं है अब, जो हो रहा है उसकी परम स्वीकृति है। उससे अन्यथा होने का कोई कारण नहीं है उससे अन्यथा हो ही नहीं सकता था, उससे अन्यथा की कोई चाह भी नहीं है, इससे अन्यथा होना चाहिए इसका कोई स्वप्न भी नहीं है। ऐसा जो तथाता है, ऐसा जो भाव है स्वीकार का, यह अगर आपके भीतर की सारी लहरों को शांत कर जाय तो आश्चर्य ! सब लहरें खो जायें तो आश्चर्य ! और इस लहर के खोने में ही आप भीतर, और भीतर और भीतर प्रवेश करते चले जाते हैं।

इंद्रियां ही सुख और दुःख के कारण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यही सुख-दुःख के कारण हैं। पुण्य और पाप कर्मों का अनुसरण करने वाली आत्मा प्राप्त हुए शरीर के संयोग को अप्राप्त होते हुए भी स्वयं की तरह समझने लगता है तब उसे उपाधि ग्रस्त जीव कहते हैं। शरीर में हूं मैं, लेकिन शरीर नहीं। शरीर में होना एक बात है और हो जाना बिलकुल दूसरी। शरीर में हूं, ऐसा जो जानना है वह आत्मा है, शरीर ही हूं ऐसा जो जानता है वह जीव है। उपाधि ग्रस्त हो गया, भ्रम में पड़ गया, भूल में पड़ गया, भ्रांति में पड़ गया, जो है नहीं समझ रहा है अपने को।

शरीर हूं मैं, यह क्यों पैदा हो जाता है ? वही सुख दुःख के कारण। जब सुख दुःख की, सुख की आकांक्षा और दुःख से बचने का भाव प्रबल होता है तो जिससे मिलते हैं उसके साथ हम एकात्मा अनुभव करने लगते हैं। प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहता है मुझमें और तुझ में अब कोई भेद नहीं। हम बिलकुल एक हो गये—कभी हो नहीं सकते, हम बिलकुल एक हो गये। क्यों ? क्योंकि जिससे सुख मिलता है हम उससे एकता साधना चाहते हैं, फासला नहीं रखना चाहते, क्योंकि फासले से कहीं सुख चूक न जाय। जरा सा भी फासला हुआ तो सुख पास कैसे आएगा ? हम सब रंध रंध तोड़ देना चाहते हैं,

बिलकुल पास हो जाना चाहते हैं। इतने पास हो जाना चाहते हैं कि बीच में कोई खाली जगह न रह जाय नहीं तो सुख के आने में बाधा पड़ेगी। इसलिये जिससे हमें सुख मिलता है उससे हम अपने को एक कर लेते हैं। जिससे दुःख मिलता है उससे बड़ा फासला करते हैं। उससे बचते हैं, उसे भी नहीं चाहते। उसको पास नहीं चाहते। उसके पास नहीं होना चाहते, उससे दूर होना चाहते हैं। इसलिये जिससे दुःख मिलता है उसकी हत्या तक करने का हम विचार करते हैं। उसका जीवित होना भी हमारे लिए निकटता मालूम पड़ता है। वह कहीं भी जिये, हिमालय पर रहे, तिब्बत चला जाय, लेकिन जीता है तो लगता है कि इसी हवा को छू रहा है जिसको हम छू रहे हैं, इसी आकाश के नीचे है जिसके नीचे हम हैं। उसको इतना भी बरदास्त करना नहीं चाहते, उसको मिटा ही डालना चाहते हैं। वह कहीं न हो तभी हमें चैन मिलेगी। फासला इतना हो जाना चाहिये जितना जिंदा और मुर्दे के बीच है।

जिससे दुःख मिलता है उसे हम दूर करना चाहते हैं। जिससे सुख मिलता है उसे हम पास करना चाहते हैं और यह बहुत मजे की बात है कि जब भी हमें सुख मिलता है तो हम समझते हैं वह हमारे शरीर से मिल रहा है और जब भी दुःख मिलता है हम समझते हैं वह दूसरे के शरीर से मिल रहा है। यह बहुत मजे का मामला है, यह बहुत ही मजे का राज है। जब भी हमें सुख मिलता है, हम समझते हैं हमारे शरीर से मिल रहा है। सुख के लिए हम कभी किसी दूसरे को जिम्मेवार नहीं ठहराते हैं। सुख के लिए हम सदा स्वयं ही जिम्मेवार होते हैं और दुःख के लिए हम सदा दूसरे को जिम्मेवार ठहराते हैं। अगर मुझे कोई प्रेम करता है तो मैं समझता हूं मैं प्रेम करने योग्य हूं ही, होना ही चाहिये जैसा हो रहा है। इसमें कोई धन्यवाद देने तक का कारण नहीं है। मैं प्रेम करने योग्य हूं ही और जब मुझसे कोई क्रोध करता है तो मैं कहता हूं यह आदमी स्वभाव से क्रोधी है तब मैं ऐसा नहीं सोचता मैं कोध करने योग्य हूं ही और दोनों बातें एक साथ हैं। यह विभाजन तरकीब है और धोखा है या तो मैं दोनों हूं या नहीं हूं। दो में से कुछ भी आदमी चुन ले तो सत्य की तरफ आसानी हो जाती है। दो में से कुछ भी चुन ले, या तो मैं दोनों हूं। प्रेम करने योग्य भी और घृणा करने योग्य भी। अगर मैं दोनों चुन लूं तो दोनों काट देते हैं एक दूसरे को क्योंकि मैं दोनों एक साथ कैसे हो

सकता हूं ? या मैं यह चुन लूं कि मैं दोनों नहीं हूं । न घृणा करने योग्य न प्रेम करने योग्य, तब भी मैं खाली रह जाता हूं । लेकिन हमारी तरकीब यह है कि हम अपने को समझ लेते हैं कि मैं समस्त सुखों को पाने का अधिकारी हूं और अगर मुझे दुःख मिलते हैं, यह दूसरे की कृपा से, सदा दूसरे कारण-भूत हैं। इसलिए कोई आदमी यह नहीं पूछता कि संसार में सुख क्यों है ? मुझसे लोग आकर पूछते हैं संसार में इतना दुःख क्यों है ? अभी मुझे एक ऐसा आदमी नहीं मिला जिसने आकर पूछा हो कि संसार में इतना सुख क्यों है ? उसको तो मैं मानता ही हूं कि अधिकारी है इसमें कोई पूछने का सवाल हो नहीं । ऐसा तो होना ही चाहिये, ऐसा हम मानते हैं । दुःख क्यों है यह सवाल है, कोई मुझसे आकर यह नहीं पूछता कि आदमी जीता क्यों है ? लोग पूछते हैं आदमी मरता क्यों है । मृत्यु क्या है ? जीवन तो होना ही चाहिये, लेकिन मृत्यु क्यों है ? ऐसा लगता है कि जीवन तो हमारे भीतर है, मृत्यु कहीं बाहर से आती है । यह मजा है । तो मृत्यु को हम सदा दूर सोचते हैं, कहीं बाहर से आती है, हमको मार डालती है और जीवन हम और मृत्यु कहीं बाहर । कभी बीमारी की शकल में आती है, कभी महामारी की शकल में आती है, कभी दुश्मन की शक्ल आती है, लेकिन है बाहर, आती है हमको मार डालती है, इससे कैसे बचें और हम हैं जीवन हमारी सदा की तरकीब यह है कि जो प्रीतिकर है जो सुखद है उसे अपने से जोड़ लेते हैं । जो अप्रीतिकर है उसे किसी और से जोड़ देते हैं ।

इसलिए धर्मों को ईश्वर के साथ शैतान की भी कल्पना करनी पड़ती है । यह सब इसी तर्क के कारण यह उपद्रव पैदा होता है कि बिना शैतान के जिंदगी को समझना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है । भगवान दयालु हैं समझ में आता है, लेकिन फिर एक छोटासा बच्चा केन्सर से मर जाता है अब क्या करें ? इस बच्चे ने न अभी कोई पाप किया, न अभी कोई चोरी की, न हत्या की, न कुछ किया, यह केन्सर से मर गया । यह मरा हुआ ही पैदा हुआ, अगर मरा हुआ ही पैदा होना था तो भगवान ने इसको पैदा ही किसलिये किया ? जब मरा हुआ ही पैदा करना था तो यह ना समझी क्यों ? कम से कम भगवान को तो पता होना चाहिये, जब मरा हुआ ही पैदा होगा तो यह पैदा करने का उपद्रव क्यों कर लिया ? तो हमें एक दूसरा व्यक्तित्व खोजना पड़ता है क्योंकि भगवान को हम अपने से जोड़ना चाहते हैं । अगर

भगवान भी ऐसा करता है कि बच्चे को केन्सर दे देता है, बूढ़े मरना चाहते हैं और मर नहीं सकते, घसिटते रहते हैं, सड़ते रहते हैं। करोड़ों लोग भूखे हैं, रोज युद्ध होता है, अगर भगवान ही यह सब कुछ है तो फिर हम भगवान से अपने को एक नहीं कर सकते। भगवान को हमें बिलकुल अच्छा बनाकर रखना पड़ता है और यह बुरा कहां जाय ? यह कौन कर रहा है ? तो इसके लिए अब दूसरा भगवान पैदा करना पड़ा, इसको हम शैतान कहते हैं, यह बुराई का भगवान, वह करवाता है। डेविल, वह यह सब काम कर रहा है।

सिर्फ हिन्दू धर्म एक मात्र धर्म है पृथ्वी पर जिसमें परमात्मा को दोनों में रखने की हिम्मत की है। इसलिये मैं मानता हूं कि हिन्दू जितने गहरें जा सकेंगे जीवन के सत्य को समझने में उतने कोई भी नहीं जा सकेंगे।

जिसे हिंदुओं ने महादेव कहा है, क्यों कहा है ? इनमें दोनों को एक साथ कहा है, बनाने वाला भी मिटाने वाला भी वही। वही जहर भी, अमृत भी वही एक। बड़ी हिम्मत की बात है यह कहने की, और ऐसे भगवान के साथ अपने को एक समझना बड़ी क्रांति है क्योंकि हमारा सारा तर्क गिर जायेगा। यह जो तर्क है अच्छे को हमारे साथ जोड़ने का और बुरे को कहीं और हटा देने का वह तर्क गिर जायेगा। अगर आप चोरी करते हैं तो आप कहते हैं कि शैतान ने करवाया और अगर प्रार्थना करते हैं तो आप कर रहे हैं। मजेदार आदमी हैं। अगर दान देते हैं तो आप दे रहे हैं और चोरी करते हैं तो, यह संसार में बुराई की शक्तियाँ काम कर रही हैं। भले को हम अपने से जोड़ना चाहते हैं, बुरे से नहीं। लेकिन जगत दोनों का जोड़ है। या तो दोनों को इंकार कर दें या दोनों को स्वीकार कर लें। दोनों हालतों में, दोनों से मुक्ति हो जाती है। इस शरीर के साथ हमारा बंधन इसलिये निर्मित हो जाता है कि हम कहते हैं कि सुख इससे मिलता है, दुःख कोई दूसरे देते हैं, सुख इससे मिलता है। इसलिये दूसरों को, दूसरों से बचें या दूसरों को बदलते जायें या जब तक दूसरे सुख मालूम पड़ते हैं तब तक उनके साथ रहें, जब दुःख देते मालूम पड़ते हैं तब उनसे हट जायें।

विवाह और तलाक की सारी व्यवस्था पति-पत्नि के बीच ही नहीं, सभी सम्बन्धों में है। एक मित्र मेरे पास आते थे सदा आते-जाते थे, कि मेरी बुद्धि कैसे विकसित हो, विवेक कैसे जागे। मैं उनको कहता था जागेगा सम्भावना है, प्रयास करना

चाहिये, बड़े खुश लौटते थे, सम्भावना से। जागना-वागता नहीं सम्भावना से, जगाना पड़ता है। लेकिन बड़े खुश लौटते थे, यही उनकी प्रसन्नता थी। महिने पन्द्रह दिन में आकर वे मुझसे वह सुन जाते थे, इससे उनको फिर से गति मिल जाती थी। दस-पन्द्रह दिन वैसे ही रहते कि जैसे वह सदा से रहे हैं, यह भरोसा की सम्भावना है। यह भरोसा की सम्भावना है, पन्द्रह दिन वे फिर भरोसे में गुजार देते थे, जब उनका इंजिन चुक जाता, वे फिर मुझसे आकर पूछ जाते, फिर भरोसा ले जाते, काफी दिन यही चला। मैंने कहा यह सम्भावना तो कोई बात से नहीं बन सकती, इस ढंग से। एक दिन आये तो मैंने कहा, कोई सम्भावना नहीं। उन्होंने कहा क्या कहते हैं ? पहले तो वे समझे ही नहीं, उसने कहा : क्या कहते हैं ? कोई सम्भावना नहीं ? मैंने कहा : कोई भी सम्भावना नहीं। बुद्धि तुममें है ही नहीं जो विकसित हो सके। और विवेक इतनी आसान बात नहीं, तुम्हारे बस की नहीं, तुम छोड़ो यह ख्याल।...उस दिन चेहरे से उनका रंग उड़ गया, बड़े दुःखी लौटे। अब मेरे खिलाफ हो गये हैं, यह आदमी ठीक नहीं। तब तक मैं आदमी ठीक था जब तक कहता था सम्भावना है, प्रसन्न होते हुए लौटते थे। अब मैं आदमी बुरा हो गया इस आदमी के पास नहीं फटकना। लोगों को समझाते थे यह आदमी ठीक नहीं, यह बड़े मजे की बात है मैं तब तक ठीक था जब तक सुखद था। और जब तक यह सुखद था तब तक यह अपने को ही श्रेष्ठ मान रहे थे, क्योंकि संभावना थी। अब मैं दुःखद हो गया क्योंकि मैंने कहा कि कुछ उपाय है नहीं तुम्हारे साथ, तुम्हारा नर्क निश्चित है।

हम उससे अपने को जोड़ना चाहते हैं जिससे हमें लगता है सुख मिल रहा है। उससे हम अपने को एक मानने लगते हैं। जिससे दुःख मिल रहा है उससे हम अपने को तोड़ना चाहते हैं और क्योंकि हम अपने शरीर को समझते हैं कि इससे सुख मिल रहा है, हम शरीर के साथ बंध जाते हैं। आत्मा जब शरीर को समझने लगती है कि मैं शरीर ही हूं तो यही एक मात्र बीमारी है। ज्ञानियों ने कहा है : यही है उपाधि, यही है बीमारी। इस बीमारी से छूटने का एक ही उपाय है कि शरीर से सुख भी मिलता है तो दुःख भी मिलता है। इस पूरे सत्य को देख लें तो सुख और दुःख एक दूसरे को काट देंगे, निगेट कर देंगे। और आपको लगेगा की अब हम उसकी तलाश करें जिससे न दुःख मिलता है न सुख

मिलता, जिससे आनंद मिलता है। आनंद न दुःख है न सुख है। आनंद दोनों का अभाव है इस खोज पर हम निकलें।

□ संकलन : *मा योग प्रज्ञा*
पूना (महा०)

'भावुकता में डूबे क्षण'

मृत्यु को देखो,
तो जीवन मिलेगा,
जीवन को देखो,
तो मुक्ति मिलेगी,
मुक्ति को देखो,
तो निर्वाण मिलेगा,
निर्वाण को देखो,
तो परमात्मा मिलेगा,
परमात्मा को देखा,
तो परमात्मा ही हो गया,
जिसको पाना था,
वह मैं ही था।

□ *साधु अद्वैत भारती*, जबलपुर

भ
ग
वा
न

श्री रजनीश : इन्द्रधनुषी स्मृतियों में

बात दिल्ली की है। भगवान श्री लुधियाना से वापिस लौटते थे, और कुछ घंटों के लिए दिल्ली रुके। दिल्ली में मध्यान्ह बच्चन जी, हरीश जी (अब स्वामी चैतन्य भारती) और बहुत से मित्र मिलने आये। संध्या भगवान श्री गुजराती समाज की एक संगोष्ठी में बोलने निमंत्रित थे। निर्दिष्ट समय पर पहुंचकर वहीं से हमें रेल्वे-स्टेशन आना था। संगोष्ठी में मुश्किल से प्रारंभ में १५-२० मित्र थे बाद में ४०-५० मित्र हो गए।

मैं हतप्रभ था कि जहां लुधियाना में ४० हजार लोगों के विशाल समूह में भगवान श्री बोलने में जितना आनंद ले रहे थे वहीं ४०-५० मित्रों के बीच भी उसी सहजता, तन्मयता एवं आनंद के साथ बोल रहे थे। परमात्मा की करुणा अपार है!

★

बात पटना यात्रा की है। भगवान श्री विश्व हिन्दू सम्मेलन में पटना आमंत्रित थे।

मैं और मेरे मित्र श्याम नारायण जी चौकसे भगवान श्री के साथ थे। भाई श्याम 'युक्रांद' के सदस्यता अभियान हेतु निकले थे, में भी गया था भगवान का सेवक होकर पर श्याम भाई का कार्य पूरा संभाला। अभी 'युक्रांद' का पहला अंक निकला ही था।

'युक्रांद' की प्रत्येक रसीद पर 'नारा' जैसा घटिया शब्द छपा था।

यह मुझे लगा कि मेरा जैसा साधारण व्यक्ति 'नारा' जैसा घृणास्पद शब्द पसंद नहीं करता, तो भगवान श्री जो क्या नहीं हैं, वे कैसे उसे पसंद किए होंगे ? काफी विवाद हुआ भाई श्याम से—तो मैंने प्रसंग छेड़ ही दिया भगवान श्री से। हां तो प्रभु ने कहा कि "नारा तो मैंने कभी नहीं कहा। हां, एक बार एक मित्र ने लिखकर पूछा था कि आप क्या उपदेश देना चाहते हैं लोगों को ? आपका उद्देश्य क्या है ? तभी मैंने उन्हें उत्तर दिया था कि "मेरा छोटा सा संदेश है प्रेम, प्रेम और प्रेम अब उसी को तुम लोग कैसा भी बना ले सकते हो।"

नारा और संदेश में जमीन-आसमान का अंतर है, मैंने कहा।

प्रभु ने कहा : इसलिए तुम लोगों को शब्दों का उपयोग बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। क्योंकि कभी कोई बात पड़ी तो तुम्हारी कही बातों से मैं इन्कार न कर सकूंगा। जो भी तुम कहोगे वही मुझे 'हां' करना पड़ेगा। अतः शब्दों का उपयोग तुम्हें बहुत सोच-समझ कर करना चाहिए।

★★

यह याद नहीं कि कब व किस संदर्भ में कहा था, पर एक बार भगवान श्री ने बात करते समय मुझे बताया "अलग-अलग जगह के कागजों में अलग-अलग तरह की गंध होती है। अब मेरे साथ तो ऐसा हो गया है कि आंख मुंदी रहे, और कोई भी किताब मेरी नाक से स्पर्श करो, मैं बता दूंगा कि यह किताब (कागज) जापान की है या रूस की या कहां की।"

★★★

□ *स्वामी अगेह भारती*
जबलपुर

★ भगवान रजनीश आश्रम ★

[१७, कोरेगांव पार्क, पूना–१ (महा०) ○ टेलीफोन : २२८४५

भगवान श्री के अमृत मार्ग निर्देशन और सान्निध्य में

प्रवचन व समाधि साधना शिविर

✠ कार्यक्रम ✠

● १ नवम्बर से १० नवम्बर ७४ तक, प्रतिदिन सुबह ८ बजे से प्रवचन अंग्रेजी भाषा में—

And When the Flowers Showered !

प्रवेश : प्रति व्यक्ति ५ रु० दान-पत्र द्वारा ।

● ११ नवम्बर से २० नवम्बर ७४ तक

समाधि साधना शिविर

प्रवचन विषय हिन्दी में—*'सुनो भाई साधो'*

● शिविर के अन्य कार्यक्रम :

विशेष : शिवनेत्र ध्यान,
सक्रिय ध्यान, टेण्ड प्रवचन प्रसारण, कीर्तन ध्यान, सूफी दरवेश नृत्य ।

(प्रवेश शुल्क : प्रति व्यक्ति १०० रु. । निवास एवं भोजन शुल्क : १२५ रु.)

☐ विस्तृत जानकारी एवं प्रवेश हेतु उपर्युक्त पते पर **मा योग लक्ष्मी** से सम्पर्क करें ।

भगवान श्री रजनीश जन्मदिवस

* विशेषांक *

'युक्रांद' के छठवें वर्ष के मध्य भगवान श्री रजनीश के 'जन्म-दिवस' के अवसर पर ११ दिसंबर, ७४ को एक विशेषांक निकालने की योजना है। प्रेमी मित्रों से निवेदन है कि २० नवंबर, ७४ तक हमें पूज्य भगवान श्री से संबंधित निम्न स्तम्भों के अंतर्गत रचनाएं प्रेषित कर अनुगृहीत करें :

★ भगवान श्री की अनंत आयामी जीवन दृष्टि की कोई धार्मिक चोट, जो आपके जीवन में अंतस क्रांति की घटना बन गई हो।

★ भाव संस्मरण।

★ काव्यांजलि—भाव बोध सहित।

★ भगवान श्री के अंतरंग जीवन साधना सूत्र।

★ अनमोल वचन।

★ धर्म और भगवान श्री रजनीश

★ विविध महापुरुषों के संदर्भ में भगवान श्री रजनीश का जीवन दर्शन।

★ अन्य कोई प्रिय प्रसंग।

निवेदक :

युक्रांद परिवार